ग - 10

ओ३म्

धर्म-शिक्षा

धर्म-शिक्षा

(कक्षा 10)

डॉ॰ तुलसीराम (भू॰पू॰ अंग्रेजी विभागाध्यक्ष)
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
के निर्देशन में यशपाल शास्त्री तथा डी॰ ए॰ वी॰ पब्लिक स्कूलों
के मनोनीत शिक्षकों द्वारा सम्पादित

प्रकाशन विभाग

डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्तृ समिति

आर्य समाज भवन, यू॰ पी॰ ब्लॉक
पीतमपुरा, दिल्ली-110088

पुनः संस्करणः जनवरी 2004

मुद्रक— न्यू युनाइटेड प्रोसेस
ए 26 फेस 2 नारायणा इण्डिस्ट्रयल एरिया,
नई दिल्ली–110028

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना

धर्मशिक्षा की आवश्यकता

पन्द्रह अगस्त १९९३ को प्रातः लाल किले की प्राचीर से राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए हमारे प्रधानमन्त्री डा० नरसिंह राव ने उद्घोष किया -

''धर्म के बिना मनुष्य को जीवन में रास्ता ही नहीं मिलता।'' यह सनातन सत्य है। सत्य ही धर्म है। सत्य के बिना मनुष्य को रास्ता कैसे मिल सकता है? इसीलिए स्वामी दयानन्द जी महाराज ने कहा था कि ''सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए।'' गाँधी जी ने तो यहाँ तक कह दिया कि ''सत्य ही परमेश्वर है।'' सत्य, धर्म और ईश्वर, इन तीनों में से एक की चर्चा भी करेंगे तो शेष दो की चर्चा भी करनी पड़ेगी, अन्यथा बात अधूरी रह जायेगी।

धर्म के बिना हमें रास्ता नहीं मिलता, बात केवल इतनी ही नहीं है। हम धर्म के बिना जी ही नहीं सकते। संसार की कोई भी वस्तु धर्म के बिना न रह सकती है, न काम कर सकती है। अग्नि क्या है? क्या करती है? उसकी पहचान क्या है? उत्तर एक ही है - जलाना। अग्नि यदि जलाती नहीं, तो अग्नि ही नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य के जीवन में यदि धर्म नहीं है तो वह मनुष्य ही नहीं है। रास्ता तो उसे मिलेगा ही नहीं, उसके लिए मनुष्य रहना या मनुष्य बने रहकर जीना भी असम्भव है। केवल एक मनुष्य के लिए ही नहीं, सारे मानव समाज के लिए असम्भव है। धर्म ही मनुष्य की पहचान है।

मानव क्या है? जो मननशील है, वही मनुष्य है। मनुष्य को भगवान् ने बुद्धि प्रदान की है। इस बुद्धि के कारण ही वह पशु पक्षियों से विलक्षण है। मनुष्य सोचता है कि मुझे क्या करना है? किधर जाना है? कहाँ पहुँचना है? मैं कहाँ से आया हूँ? क्यों आया हूँ? ये प्रश्न व्यक्ति भी करता है और सारा मानव समाज मिलकर भी करता है। इनके उत्तर भी ढूँढता है। हमारी राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय कल्पनाएँ और योजनाएँ इन ही प्रश्नों का उत्तर तो हैं। कल्पनाएँ और योजनाएँ भी हमारा धर्म हैं।

मनुष्य सुखी रहना चाहता है और सुखी रहने की योजनाएँ बनाता है। किन्तु क्या वह अकेला सुखी रह सकता है? आइये एक ऐसी दुनिया की कल्पना करें ''जहाँ सब कुछ उपलब्ध हो, किसी भी वस्तु की कमी न हो। वहाँ केवल आप अकेले हों और कोई दूसरा व्यक्ति आपसे झगड़ा या बँटवारा करने वाला न हो।'' क्या आप वहाँ रहना चाहेंगे? एक अकेले, उस निर्जन स्वर्ग में कोई भी व्यक्ति पागल हो जायेगा। हमें चाहिए - साथी, मित्र, परिवार, समाज। हम अकेले नहीं जी सकते। न कुछ कर सकते हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसके लिए सब सुख, समृद्धि, उन्नति केवल समाज के बीच में ही सम्भव है। हम मिलकर जीते हैं, मिलकर आगे बढ़ते हैं, बात करते हैं, विचार करते हैं और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं। हमारा लक्ष्य है सामूहिक सुख -

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

सामाजिक सुख के लिए ऐसे नियमों पर चलता पड़ेगा कि हमें काम करने की स्वतन्त्रता तो मिले किन्तु किसी दूसरे की स्वतन्त्रता को आघात पहुँचा कर नहीं। सामूहिक जीवन के नियम

और सिद्धान्त धर्म का अंग हैं। भारत के जीवन में ये नियम हमारे विधान में सन्निहित हैं। हमारा विधान भी हमारे धर्म का अंग है, वही हमारे राष्ट्रीय जीवन की आचार संहिता है। विधान को मानना हमारा राष्ट्रीय धर्म है। क्योंकि उसी के सहारे तो हमारा सामूहिक जीवन सम्भव है। विधान ही हमें समाज के रूप में धारण कर रहा है। विधान नहीं होगा तो हम बिखर जायेंगे।

ऋषियों ने धर्म की एक परिभाषा दी है -

''धारयति इति धर्मः'' जो धारण करता है वही धर्म है।

जिस प्रकार राष्ट्र का एक धर्म है जो राष्ट्र को धारण करता है उसी प्रकार एक धर्म वह है जो सारे राष्ट्र-धर्मों से ऊपर है और जिससे ऊपर कोई और धर्म नहीं है। वह धर्म है इस सारे संसार का धर्म, जिसने इस पृथ्वी और सभी लोक लोकान्तरों को धारण किया हुआ है, जो हमारा बनाया हुआ नहीं है और जिसका पारावार हम कभी नहीं पा सकते। हम उसी के अधिष्ठान में जीते हैं। इस सारे संसार का एक ही आत्मा है, एक ही नियन्ता है, एक ही विधाता है। संसार का विधान उसी का विधान है, वही परम शक्ति है, वही परमेश्वर है। सब व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, लोक-लोकान्तर उसी एक नियम में चलने वाले हैं। वही परम विधान है, परम धर्म है जो हमारे सारे संसार को धारण कर रहा है। सुखी रहना, समाज में बसना, उन्नति की महत्त्वाकांक्षा करना तो हमारा धर्म है ही, उस परम शक्ति को जानना, उसके विधान का साक्षात्कार करना और उसी के अनुसार जीना भी हमारा धर्म है। वास्तव में वही हमारा परम धर्म है। हमारा व्यक्तिगत धर्म, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर-राष्ट्रीय धर्म उसी के अन्तर्गत है, उसी का अंग है।

ऋषियों ने धर्म की एक और परिभाषा दी है -

''यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस् सिद्धिः स धर्मः।''

जिसके द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनों की सिद्धि हो सके, वही मार्ग धर्म है। अभ्युदय का अर्थ है इस लोक में सबका सामूहिक सुख, समृद्धि, उन्नति। किन्तु कोई भी मननशील, बुद्धिजीवी व्यक्ति केवल लौकिक उन्नति से सन्तुष्ट नहीं होता। यह पृथ्वी लोक तो विराट् संसार में मानो एक कण के समान है और इसे भी छोड़ना तो पड़ता ही है। इसलिए केवल लौकिक सुख समृद्धि के आधार पर मनुष्य को शाश्वत सुख नहीं मिल सकता। मनस्वी व्यक्ति इस लोक से ऊपर किसी ऐसे आनन्द की प्राप्ति करना चाहता है जो सदा एक रस बना रहे। वही परमानन्द है, वही परम स्वतन्त्रता है, क्योंकि उस व्यवस्था में मनुष्य सब बन्धनों से छूट जाता है। जैसे हमें शारीरिक, भौतिक भूख लगती है जो भोजन से शान्त हुआ करती है वैसे ही हमें मानसिक और बौद्धिक भूख होती है जो ज्ञान से शान्त होती है। इसी प्रकार हमें आध्यात्मिक भूख भी होती है जो श्रद्धा और भक्ति से मिटती है और आनन्द प्रदान करती है। निःश्रेयस् आत्मिक आनन्द से सिद्ध होता है। अभ्युदय सामाजिक उन्नति है तो निःश्रेयस् व्यक्तिगत आत्मिक सिद्धि है। धर्म हमें सामाजिक और वैयक्तिक दोनों प्रकार की उन्नति प्रदान करता है। हमें उन्नति और शान्ति दोनों की आवश्यकता है और दोनों की सिद्धि धर्म से होती है। यदि हमारी कुछ ऐसी मान्यताएँ हैं जिन से अभ्युदय और निःश्रेयस् इन दोनों की सिद्धि नहीं होती हो तो वे धर्म का अंग नहीं हो सकतीं। अतः सम्पूर्ण जीवन जीने के लिए हमें धर्म की आवश्यकता है।

यहाँ पर एक प्रश्न उठना आवश्यक है - यदि अभ्युदय का अर्थ है इस लोक मैं हमारी सामूहिक उन्नति तो सेक्युलरिज्म से काम क्यों नहीं चल सकता? भारत का विधान सेक्युलरिज्म पर ही आधारित है और वह है धर्मनिरपेक्ष। बात घूम फिर कर वहीं आ जाती है - सेक्युलर वातावरण में धर्म की चर्चा क्यों?

प्रश्न महत्त्व पूर्ण है और इसका समाधान आवश्यक है। हमारे सेक्युलर राष्ट्र का आधार है हमारा विधान। भारत का विधान हमारी सेक्युलर आचार संहिता है। किन्तु इस आचार संहिता के पीछे शक्ति कौन सी है? हमारे विधान के पीछे शक्ति है लोकशक्ति। इसके पीछे कोई ईश्वरीय शक्ति नहीं है। लोक भारत ने इसका निर्माण किया है और जनता ने ही स्वयं इसे धारण किया है। किन्तु फिर क्या हुआ? आज तक इस विधान के अन्दर ७९ संशोधन किये जा चुके हैं। क्या संसार के ईश्वरीय विधान के अन्दर सृष्टि के आदि से अथवा हमारे जीवन काल में ही कोई संशोधन हुआ? नहीं। किन्तु हमारे विधान में इतने संशोधन करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? कारण यह है कि ईश्वरीय विधान सम्पूर्ण होता है और मानवीय विधान अपूर्ण। ईश्वरीय विधान के नियम और सिद्धान्त शाश्वत होते हैं और मानवीय विधान के सिद्धान्त कई तो शाश्वत होते हैं और कई केवल सामयिक। मानव समाज समय के दबाव के नीचे परिस्थितियों से समझौता करने के लिए शाश्वत नियमों और सिद्धान्तों का अनादर कर डालता है। हमारे नेता व्यक्ति या वर्ग या केवल पार्टी के तात्कालिक हित की दृष्टि से नियम बना सकते हैं और समूचे समाज तथा राष्ट्र की अवहेलना कर सकते हैं।

अतः अभ्युदय और सेक्युलर सिद्धान्तों में बहुत बड़ा अन्तर है। अभ्युदय के लिए हम जो सिद्धान्त या नियम अपनाते हैं या बनाते हैं उनके पीछे प्रेरणा होती है धर्म की, जिसके सिद्धान्त शाश्वत होते हैं। किन्तु सेक्युलर सिद्धान्तों या मूल्यों के पीछे जो प्रेरणाएँ होती हैं वे सामयिक होती हैं। अतः कई बार सेक्युलर उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अधर्म का सहारा भी लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए भारत के विधान के अनुसार ही सभी नागरिक पूर्ण रूप से बराबर नहीं हैं। समता के

मानवीय मूल्य को मानकर भी हमने कई वर्गों को असमान छोड़ दिया है। यदि हम धर्म के अन्तर्गत शाश्वत सिद्धान्तों के आधार पर ऐहिकवाद के रूप में सेक्युलरिज्म को अपने राष्ट्रीय जीवन में अपनाते तो हमारे विधान में विसंगतियाँ न आतीं। किन्तु यह मानकर भी कि धर्म के बिना मनुष्य को जीवन में रास्ता ही नहीं मिलता हम यह मानते हैं कि धर्म के बिना भी हमें विधान में तो रास्ता मिल ही सकता है। वास्तव में मात्र सेक्युलर सिद्धान्त को मानने वाले धर्म को भी राजनीतिक सेवा में जोड़कर वर्ग या पार्टी का हित सिद्ध कर सकते हैं।

सेक्युलर वातावरण में केवल नैतिक शिक्षा ही पर्याप्त क्यों नहीं? हमारी नैतिकता भी वह नहीं है जिसके पीछे प्रेरणा शाश्वत धर्म की हो। हमारे विधान की तरह हमारी नैतिकता भी तो मानवकृत है। अतः केवल भौतिक और आर्थिक उन्नति करने के लिए हम नैतिकता का भी उल्लंघन कर डालते हैं। नैतिक आचरण यों तो धर्माचरण का अंग है किन्तु धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था में नैतिकता धर्म का अंग न होकर केवल भौतिकवाद या राजनीति का पर्याय ही बन जाती है। धर्म के अनुसार अनैतिक व्यवहार करना पाप है और पापाचरण को पकड़ने के लिए किसी पुलिस की आवश्यकता नहीं होती। पकड़ने वाली शक्ति अन्दर ही तो विद्यमान है। किन्तु मात्र नैतिकता को मानने वाले नित्य नियमों को न मानकर चालाकी से बगले भगत बने अपना काम निकालते रहते हैं। अतः मात्र नैतिकता सैक्युलरिज्म की तरह लँगड़ी है। धार्मिक सैक्युलरिज्म और धार्मिक नैतिकता और है, राजनीतिक नैतिकता और सेक्युलरिज्म दूसरी। हमारा सेक्युलिज्म और सेक्युलर नैतिकता धर्मनिरपेक्ष हैं, वे लंगड़े तो होंगे ही। जब तक हम सेक्युलरिज्म को धर्म नहीं मानेंगे और इस धर्म को परम धर्म अर्थात् सृष्टि धर्म का अंग नहीं मानेंगे, हमारा सेक्युलरिज्म लँगड़ा रहेगा। हमारी नैतिकता भी लँगड़ी रहेगी।

हमारी नैतिकता केवल कानून बनकर रह जायेगी और कानून से बचने के तो बहुत रास्ते हैं। कानून तोड़ना अपराध है। धर्माचरण न करना पाप है। लोग अपराध से बच सकते हैं, पाप से नहीं।

क्या कानून के अनुसार जीना काफी नहीं है? धार्मिक व्यक्ति कहेगा - नहीं। कानूनी जीवन जीना तो मानवता का न्यूनतम स्तर है। न्यूनतम इसलिए कि कानून तोड़ते ही हम अपराधी की श्रेणी में आ जाते हैं और अपराधी मानव स्तर से गिर जाता है। उदाहरण के लिए - मान लो आपके पास चार रोटियाँ हैं। आपके पास एक भूखा आदमी बैठा है। उसके पास न रोटी है न पैसा। वह दयनीय दृष्टि से आपको देख रहा है। आपने अपनी रोटियाँ खा लीं। भूखे को कुछ नहीं दिया। क्या आपने कोई अपराध किया? क्या पुलिस आपको पकड़ेगी? नहीं, क्योंकि आपने कानूनी तौर पर कोई अपराध नहीं किया। किन्तु आप अपने आत्मा से एक प्रश्न और पूछिये - क्या मैंने ठीक आचरण किया? अन्दर से उत्तर मिलेगा - नहीं। जो कुछ मैंने किया, क्या उसे अच्छा भी कर सकता था? उत्तर मिलेगा - हाँ। कानून कहता है कि आपने कोई अपराध नहीं किया धर्म कहता है कि आपने पाप किया है। कम से कम एक पुण्य का अवसर खो दिया। क्या भूखे आदमी को आपकी रोटी छीनने का अधिकार है? हम कहेंगे - नहीं। किन्तु १७८९ के फ्रांस से पूछो, १९१७ के रूस से पूछो, १९४९ के चीन से पूछो। वे सब कहेंगे - हाँ। इस हाँ और नहीं के चक्कर में सभी क्रान्तियों का भेद छिपा हुआ है। कानून को मानो, पर इससे ऊपर उठकर धार्मिक बनो। धर्म को अपने जीवन में धारण करो और उसे राजनीति का खिलौना बना कर उससे खिलवाड़ मत करो। धार्मिक व्यक्ति मानव मात्र को ईश्वर का परिवार मानता है, वह मानव समाज को वर्ग समुदाय या पार्टियों का गठबन्धन नहीं मानता। भारत में हम राजनीतिक सेक्युलरिज्म के तम्बू में खड़े

अलग अलग समुदायों, वर्गों, मत मतान्तरों का गठजोड़ बने हुए हैं। पारिवारिक भावना न होने से हमारा गठबन्धन सदा खतरे में रहता है। एक परिवार में, एक समाज में और एक लोकवादी राष्ट्र के अन्दर कोई अल्पसंख्यक कैसे हो सकता है? किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरे को अल्पसंख्यक कहकर उसका अपमान करे। सब समान हैं, सबके अधिकार समान हैं, सबके कर्त्तव्य समान हैं। कानून के अनुसार किसी का कुछ छीनो मत, किन्तु धर्म के अनुसार केवल चोरी न करना काफी नहीं है, दूसरों को दो, दान करो, यज्ञमयजीवन जियो। हमारा सम्पूर्ण जीवन धार्मिक हो, मन,वचन और कर्म से।हमारा व्यक्तिगत जीवन धार्मिक हो, मन, वचन और कर्म से। हमारा व्यक्तिगत जीवन (प्राइवेट लाइफ़) और सामाजिक जीवन (पब्लिक लाइफ) दोनों को धार्मिक होना चाहिए। जो लोग यह कहते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन में समता हो, वे मिथ्याचारी है और भोली जनता को ठगते हैं। ऐसा कहने वाला कभी लोकप्रिय नेता नहीं हो सकता क्योंकि वह कानून को तो मानता है किन्तु धर्म को नहीं मानता।

एक प्रश्न और - आज का युग विज्ञान (सायंस) का युग है। सायंस से ही धर्म का काम क्यों न ले लें? सायंस प्रकृति और प्राकृतिक नियमों का अध्ययन करती है। प्रकृति नियम सृष्टि नियम का अंग है और सृष्टि नियम ईश्वरीय नियम है। तो सायंस नियम ही काफी है। उनके अतिरिक्त धर्म की क्या आवश्यकता है?

ठीक है किन्तु जरा सोचिये तो। डार्विन ने प्रकृति नियमों का अध्ययन किया और कहा कि प्रकृति में दो नियम मुख्य है - एक संघर्ष और दूसरा बलवान् की विजय। बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। क्या बलवान् मनुष्य भी छोटे और निर्बल

मनुष्यों को उखाड़ पछाड़ कर नष्ट कर दे? आप कहेंगे - नहीं। दूसरे को मार कर जीना प्रकृति है, दूसरे की रक्षा और सहायता करके मिलकर जीना धर्म है। सायंस केवल प्रकृति का अध्ययन करती है, आत्मा और परमात्मा का नहीं। वे उसके क्षेत्र से बाहर है। समाज विज्ञान भी समाज की प्राकृतिक गतिविधियों का अध्ययन करता है, उससे ऊपर नहीं उठता। विज्ञान अधिक से अधिक यह कहता है कि 'प्रकृतिं यान्ति भूतानि' (मनुष्य प्रकृति के अनुसार चलता है, लड़ता है, मरता-मारता है)। विज्ञान यह नहीं कहता कि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' (धर्म की रक्षा करो, वह हम सबकी रक्षा करेगा)। आज सायंस और टैक्नालजी के आधार पर दुनिया में जो भगदड़ और मारधाड़ मची है वह धर्मनिरपेक्ष सायंस के कारण है। सायंस को चाहिए दृष्टि और दिशा, वह केवल धर्म से मिल सकती है। सायंस और प्रकृति के आधार पर मनुष्य केवल पशुयोनि का जीवन जियेगा। खाना-पीना, सोना-जागना, काम-वासना में पशु और मानव दोनों बराबर है। मनुष्य की विशेषता है धर्म, यज्ञमय जीवन, सेवा, प्रेम, समाज के लिए और समाज, राष्ट्र और मानवमात्र को एक परिवार मानकर अपने आपको जीवन के लिए तैयार करना, यज्ञमय जीवन जीना और अन्त में ईश्वर भक्ति के द्वारा सब बन्धन छोड़कर अनन्त से मिल जाना। संघर्ष के स्थान पर सहयोग मानव धर्म है।

धर्म के लक्षण क्या है? यह वेद में बताया गया है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वह किसी मनुष्य विशेष का बनाया हुआ नहीं है। वह मानव मात्र के लिए है। धर्म के लक्षण उपनिषद् गीता और दर्शन में बताये गये हैं। ये ऋषिकृत ग्रन्थ है। ये भी मानवमात्र के लिए है। ये नियम स्मृति और नीतिग्रन्थों में भी बतलाये गये हैं। ये ग्रन्थ महापुरुषों के लिखे हुए हैं जिनमें समयानुसार मनुष्य को उपदेश दिया गया है। ये लक्षण

सत्यार्थप्रकाश तथा आर्यसमाज के नियमों में भी बताये गये हैं। ये भी मानवमात्र के लिए हैं, केवल आर्य समाजियों के लिए नहीं। धर्म के नियम और लक्षण महापुरुषों के जीवन में भी मिलते हैं। इसीलिए कहा है कि महापुरुषों के पदचिह्नों पर चलो। महापुरुष वे हैं जो मानवमात्र के लिए जीते हैं, सबके कल्याणार्थ उपदेश देते हैं और मानव परिवार का विभाजन नहीं करते। कोई मनुष्य कितना ही धन सम्पत्ति जुटा ले, बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ जीत ले, दुनिया भर की फौज अपने पीछे इकट्ठा कर ले, यदि वह शक्ति के आधार पर या मजहब के नाम पर मानव परिवार का विघटन करता है तो वह कभी महापुरुष नहीं माना जा सकता। महापुरुष थे मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगिराज कृष्ण, गौतम बुद्ध, भगवान् महावीर, स्वामी शंकराचार्य, गुरुनानक, गुरुगोविन्दसिंह, वीर शिवा, राणा प्रताप, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, राम कृष्ण परमहंस, महात्मा गाँधी इत्यादि। ये सब धर्ममूर्ति थे। ये अपने समय की प्रकृति से ऊपर उठे और रूढ़ियों और अन्धविश्वास तथा अन्याय के विरुद्ध सत्य सनातन धर्म की पुनःस्थापना करते रहे। इनके जीवन का अनुसरण करना चाहिए।

आज की शिक्षा सेक्युलर ही नहीं, उससे आगे धर्म-निरपेक्ष है। धर्म सार्वभौम, सर्वकालीन सनातन जीवन मूल्यों का पुंज है जो पक्षपात से मुक्त है। पक्षपात और विभाजन तो मनुष्य ने स्वयं स्वार्थवश खड़े किए हैं। धर्म के नाम पर तरह तरह के मत मतान्तर खड़े करके हम एक दूसरे के शत्रु बन गये हैं। स्कूलों में एक सत्य सनातन धर्म की शिक्षा तो मिलती नहीं, फिर बच्चों को जीवन दृष्टि, दिशा निर्देश और चरित्र निर्माण एवम् समाज सेवा का सन्देश कहाँ से मिलेगा? साम्प्रदायिक मत मतान्तरों की शिक्षा आज के युग की आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं के अनुसार नहीं है, वास्तव में समय के विरुद्ध है। इसलिए डी०ए०वी० स्कूलों में हमारा प्रयास यह है

कि बच्चों के जीवन निर्माण के लिए उनको उन शाश्वत जीवन मूल्यों की शिक्षा दी जाये जो उनमें आत्मविश्वास पैदा करके उनको स्वस्थ, सुबुद्ध और सुशील बनाकर परिवार समाज, राष्ट्र और मानव मात्र की सेवा के योग्य बना सकें।

धर्मशिक्षा केवल पुस्तकों से या मात्र क्लासरूम में पूरी नहीं होगी। केवल अध्यापक भी इसे पूरा नहीं कर पायेंगे। इसलिए हम अभिभावकों से विशेष प्रार्थना करते हैं कि अपना और घर का जीवन स्वच्छ और धार्मिक रखें। माता-पिता, दादा-दादी, सभी बच्चे के लिए महापुरुष होते हैं। वे बच्चों के लिए महापुरुष के स्थान को न छोड़ें। कृपया हमारे लेखों का अध्ययन करें, उन पर विचार करें और अपने विचार के अनुसार प्रबुद्ध होकर घर में बच्चों का मागदर्शन करें। स्कूल में हमारा प्रयास है कि बच्चों को स्वच्छ, प्रेममय, शिक्षाप्रद वातावरण मिले। माता, पिता और आचार्य मिलकर बच्चों को सन्मार्ग पर ले जायें ताकि वे अपने जीवन में आगे ही आगे बढ़ते रहें।

तुलसीराम

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष
न हि कश्चित् शृणोषि मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च
स धर्मः कस्मान्न सेव्यते।।

यह मैं बाहु उठाकर चिल्ला रहा हूँ पर कोई मेरी बात सुनता ही नहीं है। मेरा कहना है कि तुम उस धर्म का सेवन क्यों नहीं करते जिससे अर्थ और काम दोनों की उपलब्धि होती है।

- महामुनि वेदव्यास

वेदालोक

कुर्वन्नेवेह कर्माणि
जिजीविषेच्छतं समाः।

इस संसार में मनुष्य को कर्म करते हुए ही सौ साल तक जीने की इच्छा करनी चाहिए।

पाठ - १

अनादि! तेरी अनन्त महिमा

विमल इन्दु की विशाल किरणें
प्रकाश तेरा बता रही हैं,
अनादि! तेरी अनन्त महिमा
जगत् को लीला दिखा रही है।।१।।

प्रसार तेरी दया का कितना
ये देखना हो तो देख सागर,
तेरी प्रशंसा का राग प्यारे
तरंग मालाएँ गा रही हैं।।२।।

तुम्हारा स्मित हो जिसे निरखना
वो देख सकता है चन्द्रिका को
तुम्हारे हँसने की धुन में नदियाँ
निनाद करती ही जा रही हैं।।३।।

विशाल मन्दिर की यामिनी में
जिसे देखना हो दीपमाला
तो तारका गण की ज्योति उसका
पता अनूठा बता रही है।।४।।

प्रभो! प्रेममय प्रकाश तुम हो
प्रकृति पद्मिनी के अंशुमाली,
असीम उपवन के तुम हो माली
धरा बराबर बता रही है।।५।।

जो तेरी होवे दया दयानिधि
तो पूर्ण होता ही है मनोरथ,
सभी ये कहते पुकार करके
यही तो आशा दिला रहा है।।६।।

(जयशंकर प्रसाद)

अभ्यास

(१) चन्द्रमा की किरणें किसके प्रकाश को बताती हैं?
(२) संसार को लीला कौन दिखा रही है?
(३) प्रभु की मुस्कान को तथा हँसी को कहाँ कहाँ देखा जा सकता है?
(४) पद्मिनी (कमलों वाली झील) तथा अंशुमाली (सूर्य) का क्या सम्बन्ध है?
(५) हमारे मनोरथ की पूर्णता किसकी दया पर निर्भर है।

अपने सौन्दर्य की परख के लिए आईने को नहीं, अपने अन्तर्मन को देखें। वही आपको बतायेगा कि आप कितने सुन्दर हैं।

पाठ-२

वेदों की उत्पत्ति

('ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' पर आधारित)

प्रश्न - वेद किसने उत्पन्न किये और कितने हैं?

उत्तर - वेदों का ज्ञान ईश्वर ने दिया है। वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरें तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।

अर्थात् उस परब्रह्म से चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ जो सत् (कभी नाश न होने वाला) है। जो चित् (ज्ञान स्वरूप) है और आनन्द (सदा सुखस्वरूप तथा सबको सुख देने वाला) है। उसने सृष्टि के आदि में अग्नि को ऋग्वेद, वायु को यजुर्वेद, आदित्य को सामवेद तथा अंगिरा ऋषि को अथर्ववेद का ज्ञान दिया।

प्रश्न - ईश्वर निराकार है फिर उससे शब्द रूप वेद कैसे उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर - ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। उसने बिना हाथ पाँव सारे जगत् को रचा है। वैसे ही उसने अपनी सामर्थ्य से वेदों की रचना की है। जैसे मन में मुखादि अवयव न होते हुए भी प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का उच्चारण रूप मानस व्यवहार होता है वैसे ही परमेश्वर में भी जानना चाहिए। यह ज्ञान ऋषियों की आत्मा में प्रकाशित होता है, ध्वनि रूप में नहीं।

प्रश्न - ईश्वर को वेदों की रचना या निर्माण करने की क्या आवश्यकता थी?

उत्तर - परमेश्वर के ज्ञान के बिना मनुष्य को ज्ञान होना संभव ही नहीं है क्योंकि मनुष्य बिना कुछ सिखाये पढ़ाये कुछ सीख नहीं सकता। अतः, उसे अन्य मनुष्योपयोगी वस्तुओं के साथ वेदों का ज्ञान देना भी ज़रूरी था।

प्रश्न - स्वाभाविक ज्ञान ईश्वर ने मनुष्यों को दिया। उस ज्ञान की क्रम से वृद्धि हुई और तब मानव ने वेद आदि की रचना की, ऐसा क्यों न मान लिया जाय?

उत्तर - यद्यपि मनुष्य में ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति स्वाभाविक है परन्तु ज्ञानदाता के बिना वह ज्ञान ग्रहण करने में असमर्थ है। यदि एक बालक को जंगल में छोड़ दिया जाय और बोल चाल की प्रक्रिया से दूर रखा जाय तो वह बोलने तथा अर्थ के समझने में समर्थ नहीं हो सकता। वह पशु तुल्य ही रहेगा। अतः स्पष्ट है कि ईश्वर के उपदेश के बिना किसी को ज्ञान नहीं हो सकता। ईश्वर का यह उपदेश ही वेद है जो उन चार ऋषियों को दिया और उन्होंने दूसरे ऋषियों को बताया।

प्रश्न - वेदों को रचने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर - वेदों की रचना करके परमेश्वर ने अपनी अनन्त विद्या का परार्थरूप प्रयोजन सफल बनाया है। यह उसका महान् उपकार है। यदि परम कृपालु परमेश्वर अपनी वेद विद्या का उपदेश हम लोगों को न करता तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि किसी को यथावत् प्राप्त न होती। जैसे प्रभु ने प्रजा के सुख के लिए कन्द-मूल-फल आदि छोटे बड़े, पदार्थ रचे हैं वैसे ही उसने सब सुखों का प्रकाश करने हेतु सब सत्य विद्याओं से युक्त वेद विद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिए किया है।

प्रश्न - परमेश्वर न्यायकारी है फिर उसने सबके हृदयों में अपना ज्ञान क्यों नहीं दिया?

उत्तर - जो जैसा कर्म करे उसको उसी प्रकार का फल दिया जाय - यह न्याय है। इन्हीं चार ऋषियों के ऐसे पूर्वसंचित कर्म थे, इसलिए उनके हृदयों में वेदों का प्रकाश किया।

प्रश्न - वे चार ऋषि तो सृष्टि के आदि में पैदा हुए, उनका पूर्व पुण्य कैसे जाना गया?

उत्तर - जीव, जीवों के कर्म और जगत् ये तीनों अनादि हैं। जीव और कारण जगत् स्वरूप से अनादि है, कर्म और स्थूल कार्यजगत् प्रवाह से अनादि हैं। इन चारों को निमित्त बनाकर ईश्वर ने वेदों का प्रकाश किया। उनके द्वारा ही सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक और ब्रह्मा से लेकर हम लोगों तक सब सत्य विद्याओं को सुनते आते हैं, इसी से वेदों को 'श्रुति' कहा जाता है।

प्रश्न - वेदों की उत्पत्ति का समय क्या है?

उत्तर - एक अरब, सत्तानवें करोड़, उनतीस लाख, उनचास हजास चौरानवें (१,९७,२९,४९,०९४) वर्ष वेद और जगत् की उत्पत्ति में हो गये हैं। आर्य हिन्दूजन अपने संकल्पों में तिथि-मास-वर्ष निरन्तर बोलते आ रहे हैं।

(यह गणना विक्रमी संवत् २०५१ तथा ईसवी सन् १९९४ तक की है।)

अभ्यास

(१) वेदों की रचना परमात्मा ने किस उद्देश्य से की?
(२) परमेश्रर ने चार ऋषियों को ही वेद ज्ञान क्यों दिया?
(३) वेदों को उत्पन्न हुए कितना समय हो गया?

(४) सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए ऋषियों का पूर्व पुण्य कैसे संभव है?

(५) 'मनुष्य के स्वाभाविक ज्ञान में जो विकास होता रहा उसी का परिणाम वेदों के निर्माण में कारण बना' ऐसा मानने में क्या दोष है?

दुर्जन से बचो

दुर्जनेन समं वैरं प्रीतिं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ।।

दुर्जन के साथ न दुश्मनी अच्छी और न दोस्ती। गर्म अंगारा जला देता है और ठंडा हाथ को काला कर देता है।

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद् विश्वास कारणम्।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम्।।

दुर्जन का प्रियवादी होना उसके विश्वास्य होने का कारण नहीं हैं। मिठास उसकी जीभ के अगले भाग पर ही रहती हैं, हृदय में तो भयानक विष भरा होता है।

दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्यालंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः।।

दुर्जन भले ही विद्या से अलंकृत हो, उसका त्याग कर देना चाहिए। क्या मणि वाला साँप भयंकर नहीं होता ?

पाठ-३

स्वाधीनता के मन्त्रदाता महर्षि दयानन्द

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने दण्डी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास ग्रहण किया था। पूर्णानन्द १२८ वर्ष के थे अतः दयानन्द को शिष्य रूप में न अपना सके और अपने शिष्य स्वामी विरजानन्द जी के पास मथुरा जाकर पढ़ने का परामर्श दिया। उन दिनों भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की तैयारी होने लगी थी, उसमें अपना योगदान देने के कारण दयानन्द मथुरा न जा सके। स्वामी जी के जीवन चरित में ये वर्ष अज्ञात अंकित किये गये हैं। इस संग्राम की विफलता के कुछ समय बाद हो वे गुरुवर विरजानन्द जी के चरणों में पहुँचे। इस स्वाधीनता संग्राम की सफलता के लिये मथुरा के एक नेत्रहीन साधु का आशीर्वाद लेने बहादुरशाह वहाँ पहुँचा था और एक जंगल में पालकी पर बिठाकर इस साधु (विरजानन्द) को लाया गया था। इससे विरजानन्द जी की भी देशभक्ति प्रकट होती है।

महर्षि दयानन्द ने कांग्रेस की स्थापना से बहुत पहले ही स्वाधीनता के सम्बन्ध में जो विचार अपने ग्रन्थों द्वारा प्रकट किये वे उन्हें स्वाधीनता का पुरोधा सिद्ध करते हैं। उनके कुछ विचार निम्नांकित हैं -

(१) स्वदेशी राज्य सर्वोत्तम है।

कोई कितना ही यत्न करे, जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह से रहित,

अपने-पराये के पक्षपात से शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा करने वाला, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं।

(सत्यार्थ प्रकाश आठवाँ समुल्लास)

(२) भारत की पराधीनता का चित्रण

अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य से, प्रमाद से, परस्पर के विरोध से अन्य देशों में राज्य करने की कथा तो क्या कही जाये, आर्यों का तो इस समय आर्यावर्त्त में भी अखण्ड, स्वाधीन और निर्भय राज्य नहीं है। जो कुछ है भी, तो वह भी विदेशियों के पदाक्रान्त हो रहा है। जब दुर्दिन आता है, तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं।

(सत्यार्थ प्रकाश, आठवाँ समुल्लास)

(३) राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता

परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक् पृथक् शिक्षा, अलग अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिए जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं, उसी को मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है।

(सत्यार्थ प्रकाश-आठवाँ समुल्लास)

(४) आर्यावर्त्त ही सर्वोत्तम देश है।

यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिए इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है। क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है। यह बात तो झूठी

है, परन्तु आर्यावर्त्त सच्चा पारसमणि है कि जिससे लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

(सत्यार्थप्रकाश, ग्यारहवाँ समुल्लास)

(५) चक्रवर्ती राज्य की प्रार्थना

हे ईश्वर! हमारी सहायता कीजिए, जिससे सुनीतियुक्त होकर हमारा स्वराज्य बहुत ही बढ़ जाये। घोड़े आदि श्रेष्ठ पशुओं से और चक्रवर्ती राज्य के ऐश्वर्य से हमारे काम को पूर्ण कीजिए। हमें चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य, धन, सुख प्रदान कीजिए। हम अन्योन्य की प्रीति से परम बल और पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें।

(आर्याभिविनय)

(६) स्वदेश भक्ति सर्वोपरि है।

(ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाज के प्रति) जो कुछ ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाया और कुछ कुछ पाषाणादि मूर्ति पूजा को हटाया, अन्य जाल ग्रन्थों के फन्दे से भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत से लिये हैं। खान-पान, विवाह आदि के नियम भी बदल दिये हैं। अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उसके बदले पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान नहीं हुआ, आर्यावर्त्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं, इनकी उन्नति कभी नहीं हुई।

(सत्यार्थ प्रकाश-ग्यारहवाँ समुल्लास)

अभ्यास

(१) महर्षि दयानन्द के जीवनवृत्त में उन वर्षों की चर्चा का अभाव क्यों है जब भारत में स्वाधीनता का प्रथम संग्राम चल रहा था?

(२) सिद्ध कीजिए कि स्वामी दयानन्द विदेशियों के सुराज्य से भी स्वराज्य को अधिक अच्छा मानते थे?

(३) भारत की पराधीनता का कारण स्वामी दयानन्द जी की दृष्टि में क्या था?

(४) स्वामी दयानन्द ने भारत को पारसमणि क्यों बताया है?

(५) स्वामी दयानन्द को ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाज में कौन सी बुराई नज़र आई?

कई बड़ी बड़ी बातें ऐसी होती हैं जिनमें आधे मन और पूरे मन से काम करने में उतना ही अन्तर रहता है जितना अन्तर पूर्ण पराजय और शानदार विजय में रहा करता है।

पाठ-४

दयानन्द के उपकार

आनन्द सुधासार दयाकर पिला गया।
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया।।
डाला सुधार-वारि बढ़ी बेल मेल की।
देखो समाज-फूल फबीले खिला गया।।
ऊँचे चढ़े न कूर कुचाली गिरा दिये।
यज्ञाधिकार वेद पढ़ों को दिला गया।।
खोली कहाँ न पोल ढके ढोंग ढोल की।
संसार के कुपन्थ मतों को हिला गया।।
'शंकर' दिया बुझाय दिवाली को देह का।
कैवल्य के विशाल वदन में विला गया।।

अभ्यास

(१) हमें आनन्द का सुधासार किसने पिलाया?
(२) दयानन्द ने दोबारा किसे जिलाया?
(३) सुधार रूपी जल से किस की बेल बढ़ती है?
(४) दयानन्द ने विद्या का मेल किससे कराया?
(५) वेद पढ़े हुओं को दयानन्द ने किसका अधिकार दिलाया?

पाठ-५

श्राद्ध और तर्पण

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृन्॥

यजुर्वेद अ०-२, मं०-३

अर्थात् उत्तमोत्तम जल से, विभिन्न रसों से, घी और दूध से, रोगनाशक उत्तम अन्न फलादि से माता-पिता, दादा-दादी, आचार्य आदि पितरों (बुजुर्गों) की सेवा करके उन्हें प्रसन्न करो।

इस वेदमन्त्र में माता, पिता, आचार्य आदि की सेवा का विधान है अतः हमें चाहिए कि हम अपने पूजनीय बड़ों की अन्न आदि से सेवा करें और उन्हें प्रसन्न रखें।

आर्यसमाज जीवित माता, पिता आदि की श्रद्धापूर्वक की जाने वाली सेवा को श्राद्ध मानता है तथा अपने शुभ कार्यों से उनके हृदय को तृप्ति प्रदान करना तर्पण मानता है।

जबकि पौराणिक लोग मृत माता, पिता आदि की याद में आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में उनकी निर्वाण (मृत्यु) तिथि पर ब्राह्मणों को भोजन कराना श्राद्ध मानते हैं तथा हरिद्वार, प्रयाग, गया, बदरीनाथ आदि में से किसी तीर्थ पर जाकर उन बुजुर्गों के नाम से जल आदि के अर्पण को तर्पण समझते हैं। वे कहा करते हैं कि उनकी इस प्रथा को देखकर औरंगज़ेब की जेल में कष्टों का जीवन बिता रहे बादशाह शाहजहाँ ने कहा था कि क्या ही अच्छा होता यदि मैं हिन्दू रहा होता क्योंकि हिन्दू लोग मृत माता पिता के प्रति भी अपनी श्रद्धा और सेवा भावना प्रकट करते हैं जबकि इस्लाम का यह जिन्दा पीर. आलमगीर

औरंगज़ेब बाप की सेवा तो क्या करता उल्टे बन्दी बनाकर तकलीफें दे रहा है।

वृद्धावस्था में शरीर जीर्ण हो जाता है अतः उसे स्वस्थ रखने के लिए अच्छे भोजन तथा देखभाल की आवश्यकता बढ़ जाती है। युवा पुत्र एवं पुत्रवधू यदि वृद्धों के प्रति उदासीन हो जायें तो माँ बाप का कष्ट बढ़ जाता है। माता पिता का कर्ज जिसे पितृ ऋण के नाम से पुकारा जाता है, उसे उनकी सेवा से तथा अपनी उत्तम सन्तान द्वारा उन्हें प्रसन्न करके पूरा किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि माता पिता के प्रति श्रद्धा पूर्वक की जाने वाली सेवा तथा सन्तान में पूर्वजों के गुणों को लाने के लिए किये जाने वाले श्रद्धापूर्ण कर्म का नाम श्राद्ध है। पुत्र अपनी नेकनामी द्वारा पिता के नाम को रोशन करता है और बदनामी द्वारा पिता के नाम को भी कलंकित कर डालता है। अतः जब जब कोई पिता अपने पुत्र द्वारा किये गये अथवा किए जा रहे अच्छे कामों की चर्चा सुनता है तो उसका खून बढ़ जाता है, चेहरा खिल उठता है, हृदय को अनुपम तृप्ति मिलती है। शिवाजी के द्वारा माता जीजाबाई तथा गुरु समर्थरामदस की आज्ञा में चलकर उनके नाम को महत्ता दिलाई गई। स्वामी दयानन्द द्वारा स्वामी विरजानन्द एवं स्वामी विवेकानन्द द्वारा श्रीराम कृष्ण परमहंस को जो प्रसन्नता पुण्य कार्यों द्वारा दी गई वह उनका तर्पण हुआ, जबकि उनकी सेवा श्राद्ध थी।

संसार में ऐसे भी महान् पुरुष हुए हैं जो माता-पिता का सुख तो न भोग पाये किन्तु उनके रक्त में, हृदय एवं मस्तिष्क में विद्यमान शक्ति, श्रद्धा एवं विचारशीलता के संस्कार उन्हें सदा सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते रहे। अनदेखे माता पिता की सेवा न कर पाने की पीड़ा उन्हें सालती थी। संभवतः उनकी इस पीड़ा के प्रक्षालन हेतु ही प्रलय पक्ष के पन्द्रहों दिन श्राद्ध दिवस घोषित कर दिये गये जिनमें विद्वानों के सत्कार के माध्यम से वे

अपने इन अनदेखे पितरों को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर सकें। दूसरा कारण यह हो सकता है, बहुत से राजा-महाराजा एवं अन्य शक्तिशाली लोग अपने अभीष्ट शोक दिवस को दूसरों से भी मनवाने में शान समझते हैं। उस मातमी दिन को जबरदस्ती मनवाने से उनके अहं की तुष्टि होती है। मुहर्रम के दिन मुसलमान हिन्दुओं से भी ज़बरदस्ती मातम मनवाते थे और उनकी शादी के बाजे भी न बजने देते थे। शायद इस्लाम के जन्म से पूर्व भी कभी ऐसी स्थिति आई हो जब शक्तिशालियों ने अपने बुजुर्गों के शोक दिन अपने विरोधियों से भी बलपूर्वक मनवाये हों। दिखाई पड़ता है कि ऐसी ही सम्भावित समस्या का सदा के लिए समाधान करने के लिए सारे वर्ष के शोक दिवसों को एक पक्ष में समेट दिया गया होगा। अंग्रेज़ों के विण्टर हालीडेज़ का भी श्राद्ध पक्ष के आसपास पड़ना यह पुष्ट करता है कि न केवल ये पन्द्रह दिन अपितु इनके बाद के दस दिन भी अवकाश के ही होते थे। संस्कृत काव्यशास्त्रों में करुण रस (शोक) का विसर्जक रस वीर (उत्साह) को माना गया है। यहाँ भी अगले दस दिन शौर्य प्रदर्शन के हैं जिनकी परिणति विजयदशमी को होती है।

आज श्राद्ध परम्परा न रहने से जहाँ एक ओर हमें अन्धविश्वास और पाखण्ड से मुक्ति का सुख मिला है वहाँ एक हानि भी हुई है और वह हानि यह है कि आज फिर से ये शोक दिवस सारे वर्ष में फैल गये हैं जबकि पहले शेष सारे वर्ष जन्म दिवस तथा दूसरे हँसी खुशी के त्योहार ही आते थे। आज की राजनीति ने इस मातमी सड़ाँध को और भी उग्र कर दिया है। आज तो राजनेताओं के जन्मदिवस भी उनकी समाधि और मज़ारों पर ही मनाये जाते हैं। कोई मास ऐसा नहीं बीतता जो इन राष्ट्रीय श्राद्धों से अपने को अछूता रखता हो। जन्मदिवस पर श्रद्धांजलि और मरण दिवस पर भी श्रद्धांजलि। दोनों अवसरों

पर इन समाधियों और मज़ारों पर पुष्पमाला तथा चादरें चढ़ाने का आयोजन चलता ही रहता है। कौन नेता कितना बड़ा था यह दिखाने के लिए ये आयोजन अधिकाधिक दिखाऊ बनाये जाते हैं। इससे जनता के धन और समय की बड़ी बर्बादी होती है।

वास्तव में पितरों के नाम पर औषधालय, विद्यालय, धर्मशालाएँ खुलवाना, प्याऊ लगवाना, अनाथालय, विधवाश्रम, वृद्धाश्रम आदि की धन से सहायता करना मृत पितरों का तर्पण है और अपने शुभ कार्यों से जीवित पितरों के नाम को रोशन करना, उनके हृदय को आनन्द एवं तृप्ति प्रदान करना जीवित पितरों का तर्पण है। इसमें सन्देह नहीं कि मृत का तर्पण श्रद्धा का सूचक तो है पर सत्य का नहीं क्योंकि शरीरान्त के बाद आत्मा तो दूसरे शरीर की प्राप्ति कर लेता है अतः इस कार्य से उसकी तृप्ति संभव नहीं है। हाँ ''अरे वह तो इन पुण्य कर्मों से अपने पितरों का, पुरखों का, वंश का नाम उज्ज्वल कर रहा है।'' ऐसे शब्द कानों में पड़ने पर उसकी स्वयं की तृप्ति अवश्य हो जाती है।

श्राद्ध और तर्पण की सुप्रथाएँ धूर्तों द्वारा दुस्संचालित होकर समाज के लिए मारक बन बैठी हैं अतः इन्हें उनके हाथों से निकालकर वास्तविक रूप प्रदान करने में ही जनकल्याण है।

अभ्यास

(१) श्राद्ध और तर्पण का अन्तर स्पष्ट करें।

(२) श्राद्ध और तर्पण जीवित पितरों का होता है अथवा मृत पितरों का स्पष्ट करें।

(३) मृत पितरों के श्राद्ध की परम्परा के मूल में किस कारण की सम्भावना की जा सकती है?

(४) वर्तमान श्राद्ध प्रणाली के गुणदोषों की विवेचना करो।

(५) श्राद्ध पक्ष से क्या अभिप्राय है। यह किस मास से सम्बन्ध रखता है?

पाठ-६

सुख के तीन मार्ग

जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, मानव-दानव सभी सुख चाहते हैं और उसे पाने का प्रयत्न भी करते हैं। दुःख कोई नहीं चाहता इसलिए उससे दूर रहने का प्रयत्न भी अपनी अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुसार सभी करते हैं। गर्मियों के दिनों में प्राणिमात्र छाया का आश्रय लेते हैं, धूप से दूर भागते हैं और सर्दियों में छाया को छोड़कर धूप का आनन्द लेना चाहा करते हैं। कभी स्वयं चोट खाकर ग़ैरों को बचाने में भी मज़ा आता है और कभी अपनों के साथ भी खूनी लड़ाई करनी पड़ती है। पर चाहे लड़ें या प्यार करें, धूप में बैठें या छाया में, मीठी बर्फी खायें या कड़वी कुनैन, हम जो भी करते हैं वह सुख पाने के लिए और दुःख से बचने के लिए ही करते हैं।

पशु-पक्षी आदि के लिए तो नहीं पर मनुष्य के लिए सुख पाने के तीन मार्ग है। इनमें से ही वह अपनी नीयत, समझ और सामर्थ्य को देखकर किसी एक को अपनाता है। लक्ष्य उसका एक ही होता है- सुख। इन मार्गों के नाम है-

१ हेय मार्ग, २ प्रेय मार्ग, ३ श्रेय मार्ग। इन मार्गों के पथिक क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम कहे जाते हैं।

१. हेय मार्ग - स्वार्थ के लिए पशुता का आचरण करना हेय मार्ग है। बड़ी मछली छोटी मछलियों को निगल जाती है। बलवान् कुत्ता कमज़ोर कुत्ते से टुकड़ा छीन लेता है। अपने अण्डे सेवाने के लिए कोयल कौओं के अण्डों को गिरा आती है। सर्पिणी अपने ही बच्चों को खा लेती है। यह सब सुख के लिए

किया जाता है। पशु-पक्षियों की इन चेष्टाओं से जीवन विकास का तार सीखने वाले मानवतन धारी पशु अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरे लोगों का, अपने सगे सम्बन्धियों तक का गला घोंटते हैं।

तृण झष पशु से नर तन देता
जीवन विकास का तार उसे।
वह शासन क्यों न करे भू पर
चुनना है सबका सार उसे।।

ये लोग दूध, फल तथा अन्न के स्वाभाविक भोजन के स्थान पर बेज़ुबानों की हत्या करते हैं क्योंकि इससे उनकी जीभ को विशेष सुख मिलता है। दूसरों को तड़पाने में अपने शक्तिबोध का नशा मिलता है। मदिरा, जुआ और व्यभिचार में उच्छृंखलता का आनन्द दिखाई देता है। हत्या और लूटपाट से धन पाने में उसके लिए किए जाने वाले परिश्रम का कष्ट बच जाता है। दुर्बलों पर धौंस जमाते जमाते एक बड़े तबके या कबीले का स्वामित्व मिल जाता है। शोषणवृत्ति अनायास ऐश्वर्यशाली बना देती है। काम करने वाले भले ही भूखों मरें उन्हें बिना कुछ किए सब कुछ मिल जाता है। यदि ये लोग अधिक चालाक हैं तो इस धन से अंश मात्र खर्च करके धर्म ध्वजियों और उपकारियों में भी नाम लिखा लेते हैं। खाओ, पियो, मौज करो यह इस मार्ग वालों का आदर्श है। कञ्चन और कामिनी, सुरा और सुन्दरी इस मार्ग वालों की मंजिल है। यह मार्ग हेय मार्ग कहलाता है। हेय अर्थात् त्यागने योग्य। अधम प्रकृति के लोग इसी मार्ग पर चलना पसन्द करते हैं। वे अर्थ और काम की सिद्धि को ही जीवन लक्ष्य समझते हैं और इन्हें पाने के लिए नीच से नीच कार्य करना भी उन्हें स्वीकार होता है।

२. प्रेयमार्ग - यह मध्यम लोगों का मार्ग है। प्रशस्त मार्ग है। प्रेम का मार्ग है। माता-पिता के प्रति श्रद्धा, पत्नी से प्रेम, भाई-बहिनों से स्नेह, पुत्र पौत्रों से वात्सल्य ये इस मार्ग के विभिन्न दिशाओं में पड़ाव हैं। प्रेय मार्ग का पथिक प्रेम को परमेश्वर मानता है। 'लव इज़ गॉड' यह उसका नारा है। राष्ट्र तथा समाज के प्रति प्रेम, देशभक्ति, समाज सेवा की भावना इस प्रेय मार्ग के ही विभिन्न सोपान हैं। यदि उसके प्रेम का आश्रय कोई विशिष्ट पुरुष या स्त्री है तो उसके मुख की मुस्कान देखने के लिए वह अपने सारे सुख को दाँव पर लगा देता है। काँटा उसे चुभता है टीस इसके मुख से निकलती है। उसके साहचर्य में अनुपम सुख और वियोग में असीम पीड़ा होती है। पर यह पीड़ा उसे कड़वी नहीं लगती। वह इस पीड़ा में भी मिठास की अनुभूति करता है-

मादक थी मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा।
अब हिला हृदय देती है
यह मधुर 'प्रेम की पीड़ा'।।

यदि उसकी यह राग भावना विस्तार पा गई तो इस भावना ने जिस सीमा तक विस्तार पाया है उतने समाज, क्षेत्र, प्रान्त, देश और विश्व के सुख दुख उसके अपने हो जाते हैं। उसका जीवन अपने लिए न रहकर दूसरों के लिए हो जाता है। प्राणिमात्र के लिए प्रेम, समाज के लिए कर्त्तव्य निष्ठा और ईश्वर भक्ति का उदय – ये इस मार्ग का चरमसाध्य अथवा मंजिल है। प्रेय मार्ग का पथिक इसी स्थिति में सच्चे सुख की अनुभूति किया करता है-

न त्वहं कामये स्वर्गं न राज्यं न पुनर्भवम्।

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

अर्थात् मैं न तो स्वर्ग चाहता हूँ, न राज्य चाहता हूँ और न मुक्ति ही चाहता हूँ मैं तो दुःख से पीड़ित लोगों की पीड़ा मिटाना चाहता हूँ।

३. श्रेय मार्ग - प्रेय मार्ग प्रशस्त था, यह श्रेयान् है। वह गुड था यह बैटर है। वह राग प्रधान था यह विराग प्रधान है। उसमें राग और द्वेष था इसमें न राग है और न द्वेष। ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।

प्रेय मार्ग और श्रेय मार्ग के आचरण में अन्तर इतना है कि वहाँ अपेक्षितों की सेवा और अनपेक्षितों का विरोध राग द्वारा संचालित थे यहाँ धर्मानुकूल विधिनिषेध प्राण और निमेष के समान स्वभावसिद्ध हो जाते हैं। कोई कर्त्तव्य करणीय नहीं रहता, कोई कामना नहीं रहती, सब काम्य और करणीय निष्काम भाव से होता है। प्रेय मार्ग में प्रेम को प्रभु का पर्याय माना गया है जबकि इस श्रेय मार्ग में प्रेम का स्थान सत्य ले लेता है। सत्य ही धर्म है, सत्य ही परमेश्वर है। सत्य की प्राप्ति यथार्थ ज्ञान से होती है अतः 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' कहा गया है। अर्थात् सत्य ज्ञान के बिना मुक्ति का हो पाना संभव नहीं है। प्रेम का साम्राज्य दुःख को सुख में बदल देता है। उससे संसार स्वर्ग बन जाता है। सबसे आत्मीयता, स्नेह और सम्मान मिलता है। किन्तु श्रेय मार्ग में स्नेह, सम्मान, यश की लालसा या अपेक्षा ही नहीं रहती। वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा सभी कुछ पीछे छूट जाता है। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, यश-अपयश आदि द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं।

श्रेय मार्ग का पथिक संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म एवं क्रियमाण कर्म सभी के संस्कारों से मुक्त होने लगता है अतः उनके फल

उसे विचलित नहीं करते। प्रकृति-पुरुष विवेक से अथवा ईश्वर, जीव और प्रकृति का यथार्थ बोध हो जाने से वह ईश्वर के साथ वैसी ही एकात्मता का अनुभव करने लगता है जैसे लोक में कोई अनन्य प्रेमी अपने प्रिय के साथ। इस प्रकार वह परमानन्द का भागी बन जाता है।

सुख पाने के उपर्युक्त तीन मार्ग है। पहला मार्ग हेय है, त्यागने योग्य है। उसे त्याग देना चाहिए। महर्षि वाल्मीकि पहले उसी मार्ग पर चल रहे थे। स्वामी श्रद्धानन्द का, भक्त अमीचन्द का पूर्व जीवन भी कुछ कुछ वैसा ही था। ये हेय मार्ग से प्रेय मार्ग और प्रेय मार्ग से श्रेय मार्ग की ओर बढ़े। हेय मार्ग में स्व की प्रधानता है। सब कुछ स्वार्थ है। प्रेय मार्य में स्व का विस्तार है। वहाँ परार्थ ही स्वार्थ बन जाता है जबकि श्रेय मार्ग में स्व का विसर्जन है - सब तू ही तू रह जाता है।

अभ्यास

(१) हेय मार्ग को हेय मार्ग क्यों कहा गया है?

(२) प्रेय मार्ग किसे कहते हैं? मानव समाज के लिये इसकी क्या उपयोगिता है?

(३) प्रेय मार्ग और श्रेय मार्ग में आपको वया विरोध दिखाई देता है?

(४) श्रेय मार्ग का स्वरूप बताकर यह स्पष्ट करें कि उसे प्रेय मार्ग की अपेक्षा अधिक अच्छा क्यों बताया गया है?

(५) इन तीनों मार्गों में आपको कौन सा मार्ग सबसे रुचिकर लगता है और क्यों?

पाठ-७

कर्त्तव्यबोध

हे प्रेममय प्रभो! तुम्हीं सबके आधार हो।
तुमको परमपिता प्रणाम बार-बार हो।।१।।
ऐसी कृपा करो कि हम सब धर्मवीर हों।
वैदिक पवित्र धर्म का जग में प्रचार हो।।२।।
सन्देश देश देश में वेदों का दें सुना।
समभाव और प्रेम का सब में प्रसार हो।।३।।
असहाय के सहाय हों उपकार हम करें।
अभिमान से बचें हृदय निर्मल उदार हो।।४।।
फूले फले संसार में यह रम्य वाटिका।
कर्त्तव्य का अपने सदा हमको विचार हो।।५।।
स्वाधीनता के मन्त्र का जप हम सदा करें।
सेवा में मातृभूमि के तन मन निसार हो।।६।।

अभ्यास

(१) हम धर्मवीर बनकर जग में किस धर्म का प्रचार करना चाहते हैं?
(२) वेदों के सन्देश से देश देश में किस भावना का प्रसार होगा?
(३) गीत में 'रम्य वाटिका' किसे बताया गया है?
(४) मातृभूमि की सेवा में हम क्या कुछ बलिदान करने की इच्छा रखते हैं?
(५) किस भावना से बचकर हृदय निर्मल और उदार हो सकता है?

पाठ-८

महाशय राजपाल



आज से लगभग १०० वर्ष पहले अमृतसर के एक साधारण परिवार में एक बालक का जन्म हुआ। बचपन में ही उसके पिता घर-बार छोड़कर साधु हो गए। घर का सारा भार और साथ ही अपनी पढ़ाई - दोनों ही कठिन काम उसे कुमार अवस्था में ही एक साथ करने पड़े। घर का खर्च चलाने के लिए पढ़ाई के साथ ही नौकरी कर ली। इस तरह कठिनाइयों का सामना करना, श्रम करना, हिम्मत न हारना - ये सब गुण विद्यार्थी जीवन से ही इस बालक में आ गए।

यही बालक बड़ा होकर आर्यसमाज के महान् पुरुषों में से एक बना। उन्हें हम धर्मबीर महाशय राजपाल के नाम से जानते हैं। उन्होंने ऋषि दयानंद और आर्यसमाज के प्रति बड़े उत्साह और श्रद्धा से अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया। इसी सदी के शुरू में आर्यसमाज एक महान् आंदोलन, एक नई जागृति लाने वाली, राष्ट्र-निर्माण करने वाली विचारधारा के रूप में उभर रहा था। उन दिनों आर्य समाज के प्रचार के लिए साहित्य तैयार करने का काम और उसे देश-विदेश में फैलाने का काम उन्होंने बड़ी सूझबूझ और लगन से किया। किसी भी आंदोलन, किसी भी नई विचारधारा के प्रचार के लिए उसका साहित्य तैयार करना बड़ा महत्वपूर्ण काम होता है। महाशय राजपाल ने आर्यसमाज के सभी विद्वानों, विचारकों, लेखकों, संन्यासियों को प्रेरणा देकर उनसे वेदों के संबंध में, आर्यसमाज के नियमों और सिद्धांतों के संबंध में सैकड़ों पुस्तकें लिखवाई और प्रकाशित कीं। आर्यसमाज

के प्रचार और प्रसार में उनका योगदान सदा स्मरण किया जाएगा।

उन दिनों पंजाब में लोग प्रायः उर्दू और फारसी पढ़ते थे। पुस्तकें और समाचार-पत्र भी उर्दू में छपते थे। हमारा देश अंग्रेजों के अधीन था। इसलिए अंग्रेजी भाषा का चलन भी बढ़ रहा था। ऋषि दयानंद ने आर्यसमाज द्वारा हिन्दी को अपने राष्ट्र की भाषा बनाने पर बल दिया। उन्होंने कहा था कि देश को आज़ाद कराने के लिए स्वदेशी वस्त्रों का और हिन्दी का प्रचार बहुत आवश्यक है। महाशय राजपाल ने उस ज़माने में उर्दू के साथ-साथ हिन्दी की पुस्तकों का प्रकाशन बड़े पैमाने पर किया जिससे आर्यसमाज की विचारधारा न केवल पंजाब में, अपितु सारे देश में पनप सकी। भारत के बाहर विदेशों में जहाँ-जहाँ भी भारत के लोग बसे थे उनकी पुस्तकें बहुत लोकप्रिय थीं। अफ्रीका, मारीशस, फिज़ी, इंग्लैण्ड सभी देशों में आर्यसमाज के प्रचार के लिए और भारतीय संस्कृति को जानने समझने के लिए उनका प्रकाशित साहित्य बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

महाशय राजपाल जी ने अपना जीवन एक पत्रकार के रूप में शुरू किया था। अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानंद जी उन दिनों जालंधर से एक साप्ताहिक पत्र निकालते थे, जिसका नाम था - ''सद्धर्म प्रचारक''। महाशय राजपाल जी उसमें लेख लिखा करते थे। बाद में वे स्वामी श्रद्धानंद जी के साथ सहायक संपादक के रूप में काम करने लगे। कुछ वर्षों बाद लाहौर में महाशय कृष्ण जी के साथ उनके साप्ताहिक पत्र ''प्रकाश'' में सहायक संपादक के रूप में काम संभाला। लाहौर उन दिनों पंजाब में आर्यसमाज की गतिविधियों का केन्द्र था। यहाँ आकर वे आर्यसमाज के रंग में ऐसे रंग गए कि दिन-रात ऋषि दयानंद के संदेश को घर-घर पहुँचाने की लगन लग गई। दिन-रात, अनथक परिश्रम करना उनका स्वभाव ही बन गया था।

राजपाल जी का हस्तलेख बहुत सुंदर और स्पष्ट था। वह लिखते भी बहुत तेजी से थे। उन दिनों शार्ट-हैण्ड का प्रचलन नहीं हुआ था। राजपाल जी आर्यसमाज के प्रसिद्ध संन्यासियों, विचारकों के विचार उनके भाषण सुनते हुए उसी गति से लिख लेते थे। फिर उन लेखों को संवार-सुधार कर प्रकाशित करते थे। इस तरह से उन्होंने अनेक मूल्यवान पुस्तकें तैयार कर आर्यजगत को दीं। आर्य समाज इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए उनका ऋणी रहेगा। ''भक्ति दर्पण'' नाम से उन्होंने एक पुस्तक स्वयं संपादित की, जिसकी अब तक लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं और आज भी यह उपयोगी पुस्तक उसी तरह लोकप्रिय है। इस पुस्तक के माध्यम से आर्य समाज के सिद्धान्तों और विचारों का प्रचार संसार के कोने-कोने में हुआ है।

महाशय राजपाल बहुत सरल स्वभाव के थे। बहुत मिलनसार थे और सदा मीठी वाणी बोलते थे। इन्हीं गुणों के कारण वे सबके प्रिय थे और उनके मित्रों की संख्या बहुत अधिक थी। व्यवहार में वे सच्चे थे और अपनी बात के धनी। किसी को कोई वचन दे दिया तो उसे अंत तक निभाते थे। व्यापार में उनकी सफलता भी इन्हीं गुणों के कारण हुई।

आर्यसमाज के प्रचार में ही उन्होंने अपने प्राणों की बलि दी। घटना इस प्रकार हुई। उस जमाने में अलग-अलग धर्मों के लोग परस्पर शास्त्रार्थ किया करते थे, वाद-विवाद भी होते थे। एक दूसरे के धर्म पर, विश्वासों पर आक्षेपों का उत्तर तथा साथ ही उनके धर्म पर प्रत्यारोप भी प्रकाशित होते थे। इस प्रकार से वह शास्त्रार्थ और वाद-प्रतिवाद का युग था। उन्हीं दिनों मुसलमानों की ओर से एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें हिन्दू धर्म पर तथा विशेषकर श्री कृष्ण जी महाराज पर बहुत ही भद्दे आक्षेप किए गए। इस पुस्तक के उत्तर में महाशय राजपाल ने एक छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित की, जिसका नाम था ''रंगीला

रसूल'' जिसमें मुसलमानों के पैगम्बर मुहम्मद साहब के जीवन की घटनाओं को चित्रित किया गया था। इसके लेखक वास्तव में, उनके मित्र और आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान पं० चमूपति एम०ए० थे। उन्होंने इस पुस्तक पर अपना नाम न देकर लेखक के स्थान पर ''दूध का दूध और पानी का पानी'' लिखना उचित समझा। साथ ही महाशय राजपाल जी से यह वचन ले लिया कि वे लेखक का नाम किसी भी हालत में, कभी भी, किसी को नहीं बताएंगे। पुस्तक प्रकाशित होने पर मुसलमानों ने इसे अपने पैगंबर के प्रति अपमानजनक समझा। महात्मा गाँधी ने भी अपनी मुस्लिम-परस्त नीति के कारण इस पुस्तक के विरोध में अपने पत्र ''यंग इंडिया'' में लेख लिख दिया। पंजाब की अंग्रेज़ सरकार ने महाशय राजपाल पर मुकदमा चलाया जो कई वर्षों तक चला, परंतु अंत में हाईकोर्ट ने उन्हें सम्मानपूर्वक निरपराध घोषित कर अभियोग से बरी कर दिया। उच्च न्यायालय के इस फैसले से मुसलमान बहुत चिढ़ गए। इस बात पर भी उन्हें रोष था कि महाशय राजपाल इतना कुछ होने पर भी पुस्तक के लेखक का नाम क्यों नहीं बताते। वे राजपाल जी की जान के दुश्मन हो गए। उनपर दो बार कातिलाना हमला किया गया - पहली बार १९२७ में जब उन्हें कई महीने हस्पताल में रहना पड़ा। फिर ६ अप्रैल, १९२९ को दोपहर के समय उन पर प्राणघातक आक्रमण हुआ और इस तरह उन्होंने अपने प्राणों की बलि आर्यसमाज और मित्र को दिए अपने वचन के लिए दे दी।

महात्मा आनंद स्वामी जी ने ''महात्मा हंसराज जी'' पर एक जीवनी लिखी है। उसमें पृष्ठ १६९ पर आपने महाशय राजपाल जी के अंतिम क्षणों का चित्रण किया है -

''६ अप्रैल, १९२९ को दोपहर के समय महाशय राजपाल जी धर्म-वेदी पर बलिदान हुए। ९ अप्रैल को प्रातःकाल साढ़े सात बजे मेयो हस्पताल से उनकी अर्थी बाहर लाई गई। हजारों

स्त्री-पुरुष शवयात्रा में शामिल हुए। लगभग ५ घंटे शमशान भूमि तक पहुँचने में लगे। पौने बारह बजे महात्मा हंसराज जी ने अपने हाथों से चिता में अग्नि लगाई। पूर्ण वैदिक रीति से अंत्येष्टि संस्कार हुआ। १० अप्रैल, बुधवार को सायंकाल ६ बजे के लगभग डी०ए०वी० मिडिल स्कूल के विस्तृत क्षेत्र में महात्मा जी के सभापतित्व में महाशय राजपाल जी के आत्मदान पर हिन्दुओं की एक विशाल शोकसभा हुई।''

महाशय राजपाल जी का सारा जीवन वैदिक धर्म और आर्यसमाज को समर्पित था और उसी के लिए उन्होंने अपने प्राणों की बलि दे दी।

अभ्यास

(१) महाशय राजपाल को विद्यार्थी जीवन में किस किस कठिनाई का सामना करना पड़ा?

(२) आर्य साहित्य का प्रकाशन महाशय जी क्यों और किस भाषा में करते थे?

(३) महाशय जी के बलिदान का कारण कौन सी पुस्तक बनी? इसके लेखक कौन थे?

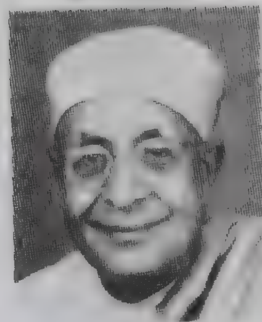
(४) 'दूध का दूध और पानी का पानी' इस कहावत का क्या अर्थ है?

(५) मुसलमान लोग महाशय जी के विरोधी क्यों हो गये थे?

वीर धर्म है अभय दहकते अंगारों पर चलना,
वीर धर्म है शाणित असि का धर पर पाँव मचलना।
वीर धर्म कहते हैं छाती तान तीर खाने को,
वीर धर्म कहते हँसकर हालाहल पी जाने को।।

पाठ-९

महात्मा आनन्द स्वामी



महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती जी का पहला नाम खुशहाल चन्द था। सदा प्रसन्न चित्त और हंसमुख रहने के कारण शिक्षा काल में ही उस्ताद द्वारा उन्हें 'खुर्सन्द' का उपनाम दे दिया गया था। 'खुर्सन्द' फारसी का शब्द है, इसका अर्थ भी हर हाल में खुश रहने वाला ही है। जीवन भर लोक सेवा, परोपकार तथा प्रभु भजन में लगे रहने के कारण जनता इन्हें महात्मा के नाम से पुकारती थी। अतः संन्यास ग्रहण करने से पूर्व वे महात्मा खुशहालचन्द 'खुर्सन्द' के नाम से अभिहित किये जाते थे।

महात्मा हंसराज के समान महात्मा आनन्द स्वामी जी की रुचि भी आरम्भ से ही धर्मकार्यों तथा देश और समाजसेवा में अधिक रही। जहाँ कहीं कोई आपत्ति आई, वे सेवा के लिए वहीं पहुँच गये। सन् १९०५ ई० में जब ज़िला कांगड़ा में भयंकर भूकम्प आया, तो वे दूसरे स्वयंसेवकों के साथ अपनी युवावस्था के आरम्भ ही में कांगड़ा जा पहुँचे और भूकम्प पीड़ितों की सेवा करते हुए इन्होंने रायबहादुर बख़्शी सोहन लाल जी से पदक प्राप्त किया।

जिला गुजरात के गाँवों में प्लेग ने आक्रमण किया तो अपनी जान की बाज़ी लगा कर वहीं आर्यसमाज की ओर से रोगियों की सेवा करने लगे। जम्मू-कश्मीर के भिम्बर, नौशहरा, कांगड़ी-कोटली प्रदेश में अकाल पड़ा, तो आर्यसमाज की ओर से हज़ारों मन अन्न लेकर जा पहुँचे। कोहाट (सीमा प्रान्त) में उपद्रवियों ने नगरी को आग लगा दी, तो महात्मा खुशहाल

चन्द वहाँ भी सेवार्थ जा पहुँचे। मालाबार (मद्रास) में सन् १९२२ में मोपलाओं ने ढाई हज़ार हिन्दुओं को बलात् धर्मभ्रष्ट कर दिया, हज़ारों को शहीद कर दिया, लूटमार में अति कर दी, तो भी आप दुःखियों एवं पीड़ितों की सहायता के लिए वहाँ गये और कई मास सेवा करके पतित किए गये एक एक हिन्दू को फिर से शुद्ध किया और भगवान् राम और कृष्ण का भक्त बनाया। इसी प्रकार बिहार के भूकम्प में तथा कोयटा के भूकम्प में दुःखियों और पीड़ितों की सेवा की। बंगाल में जब भयंकर अकाल में अंग्रेज़ सरकार ही की मूर्खता से हज़ारों लोग मरने लगे तो आपने साढ़े तीन लाख रुपये का चावल आर्य-प्रादेशिक-प्रतिनिधि-सभा की ओर से बंगाल भिजवाया और स्वयं भी सेवा के लिए बंगाल के पीड़ित प्रदेशों में जा पहुँचे। आपकी निष्काम सेवायें देखकर डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने बंगाल की ओर से बंगला भाषा में आपको अभिनन्दन पत्र भेंट किया।

जब पूर्वी बंगाल के चाँदपुर प्रदेश में मुसलमानों ने उपद्रव किया, तो वहाँ अन्न-वस्त्र इत्यादि लेकर पहुँच गये और लाहौर से २५ हिन्दुस्तानी स्काउट्स अपने पुत्र श्री युद्धवीर जी की अध्यक्षता में अपने साथ ले गये। वहाँ इन्होंने बलात् मुसलमान बनाई गई हिन्दु देवियों को फिर से शुद्ध करके उनके सम्बन्धियों को सौंपा। इसी प्रकार अनेक बार ऐसे ही कार्यों में ये सहायक बनते रहे।

जब सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से हैदराबाद दक्षिण में सत्याग्रह शुरू किया गया तो म० खुशहाल चन्द जी तीसरे सर्वाधिकारी के रूप में जेल गये। इसी प्रकार सिन्ध सरकार ने जब 'सत्यार्थप्रकाश' पर प्रतिबन्ध लगाया तो ये महात्मा नारायण स्वामी जी के साथ जनवरी १९४७ में कराची जा पहुँचे और वहाँ सत्याग्रह किया। वहाँ से सफल होकर लौटे तो मार्च

१९४७ में रावलपिण्डी, जेहलम आदि में मुसलमानों ने लूट, कत्ल तथा अग्निकाण्ड से सर्वनाश आरम्भ कर दिया। आर्यसमाज की ओर से इन्होंने सहायता कार्य आरम्भ किया और उस प्रदेश के ग्रामों में भ्रमण करके इस भयानक हत्याकाण्ड को देखते हुए हिन्दुओं को चेतावनी दी कि संकटकाल आ पहुँचा है अतः सावधान होकर रक्षा की तैयारी करनी चाहिए।

देश, आर्यजाति तथा आर्यसंस्कृति की रक्षा के लिए इन्होंने दो दैनिक पत्र 'मिलाप' तथा 'हिन्दी मिलाप' शुरू किए। हिन्दी प्रचार के लिए 'हिन्दी मिलाप' में दो लाख का घाटा उठाकर भी उसे जारी रखा।

परोपकार तथा सेवा के इन कार्यों के साथ प्रभु-भक्ति का भी आप पर विशेष रंग चढ़ा हुआ था। युवावस्था से ही ये प्रतिवर्ष एक दो मास के लिए किसी निर्जन वन में निकल जाते, वहाँ अपना भोजन स्वयं बनाते और मौन रहकर आत्मचिन्तन किया करते। इस प्रकार सर्वथा एकान्त में रहकर परमात्मा की कृपा के पात्र बनने का यत्न करते थे। इनके लिखे मौलिक ग्रन्थों में 'वैदिक सत्य नारायण कथा' 'प्यारा ऋषि', 'प्रभुभक्ति', 'सीता', 'पार्वती', 'दमयन्ती', 'महात्मा हंसराज', 'प्रभुदर्शन', 'महामन्त्र' तत्त्वज्ञान और 'सुखी गृहस्थ' उल्लेखनीय है।

जून १९४५ में रामगढ़ जिला नैनीताल में महात्मा नारायण स्वामी जी की जयन्ती थी। उस अवसर पर इन्होंने महात्मा नारायण स्वामी जी के पास पहुँच कर कहा कि अब मैं संन्यास लेना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि आपकी जयन्ती के शुभ दिन ही मेरा संकल्प पूरा हो। मैं संन्यास की दीक्षा आप ही से लेने की पूरी तैयारी करके आया हूँ। उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि ''आपका संन्यास साधारण बात नहीं है। यहाँ जंगल में नहीं, अक्तूबर मास में आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में यह शुभ कार्य होगा।''

अक्तूबर आया और चला गया कोई न कोई विघ्न आ जाता था। समय ने पलटा खाया। महात्मा नारायण स्वामी अस्वस्थ हो गये और इधर देश विभाजन की प्रलयंकारी दुर्घटना भी घट गई। सितम्बर १९४७ में स्वामी जी का शरीर छूट गया। अन्ततः पहली दिसम्बर १९४९ को महात्मा जी ने वीतराग स्वामी आत्मानन्द जी से वैदिक साधना आश्रम यमुनानगर में जाकर संन्यास की दीक्षा ग्रहण की।

संन्यास धारण करने पर म० खुशहाल चन्द का नाम आनन्द स्वामी सरस्वती घोषित किया गया। दीक्षित होकर ये नाला पानी के घने जंगल तपोवन में पहुँचे। वहीं एक पर्णकुटी बनकर आत्मचिन्तन में लम्बे समय तक लीन रहे। उत्तराखण्ड के ये अनेक दुर्गम स्थानों पर गये विशेषकर वहाँ पर जहाँ जहाँ के बारे में इन्हें यह पता लगा कि यहाँ महर्षि दयानन्द ने तपस्या की थी।

दुःखी विश्व को आत्मज्ञान का मार्ग सुझाने के लिए इन्होंने सैकड़ों स्थानों पर जाकर धर्म कथाएँ की। विदेशों में केनिया, युगण्डा, टांगानीका, तनजानिया, मारिशस, बर्मा, सिंगापुर, मलयेशिया, थाईलैंड, न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया, हांगकांग, जापान, ब्रिटेन, आयरलैंड, फ्रांस, स्विट्ज़रलैंड, इटली, यूनान और मिस्र आदि देशों में पहुँचकर अनेक उपदेशात्मक प्रवचन किए। भारत का तो कोई भाग ऐसा नहीं जहाँ वे कई कई बार न पहुँचे हों और जहाँ उनके उपदेशों ने लोगों को वह सन्देश न दिया हो जिसके बिना मानव न तो सच्चे अर्थों में मानव बनता है और न उस सुख और शान्ति को प्राप्त करता है जिसके बिना दुनिया की प्रत्येक वस्तु व्यर्थ है।

उनकी कथाओं पर आधारित जो पुस्तकें प्रकाशित हुई है उनमें, 'आनन्द गायत्री कथा', 'एक ही रास्ता', 'दो रास्ते', 'घोर घने जंगल में', 'मानव जीवन गाथा', 'भक्त और

भगवान्', 'प्रभुमिलन की राह', 'शंकर और दयानन्द', 'उपनिषदों का सन्देश', 'मानव और मानवता', 'यह धन किसका है', तथा 'दुनिया में रहना किस तरह', विशेष प्रसिद्ध हैं। ये सभी पुस्तकें गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली से प्रकाशित हुई हैं।

अक्तूबर सन् १९७७ में महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज का देहावसान हो गया।

अभ्यास

(१) महात्मा आनन्द स्वामी का संन्यास से पूर्व नाम क्या था? वह नाम उनके स्वभाव से कहाँ तक मेल खाता था?

(२) पीड़ित जनों की सहायता हेतु किए गये उनके सेवा कार्य का वर्णन करो।

(३) हैदराबाद सत्याग्रह किस हेतु करना पड़ा। महात्मा जी का उसमें क्या योगदान रहा?

(४) आनन्द स्वामी ने संन्यास की दीक्षा किनसे ग्रहण की। संन्यासी बनने के बाद उन्होंने क्या किया?

(५) महात्मा आनन्द स्वामी के साहित्य का परिचय दीजिए।

मुस्कुराने में शायद एक क्षण लगता है किन्तु उसकी याद किसी को जीवनभर रह सकती है।

पाठ-१०

पुकार

अपने भक्तों में हमको बिठा लीजिए।
ठोकरें खा रहे हैं बचा लीजिए।।१।।
नैया जीवन की है नाथ मझधार में।
करके करुणा किनारे लगा दीजिए।।२।।
छा रहा है अँधेरा मेरे चार सू।
ज्ञान ज्योति को मन में जगा दीजिए।।३।।
मान होगा किसी को किसी का पिता।
मेरा तू ही है मुझसे लिखा लीजिए।।४।।
वेदवाणी तेरी नाथ अमृतभरी।
एक प्याला मुझे भी पिला दीजिए।।५।।
देश को है पिता इक तेरा आसरा।
इसको गिरती दशा में बचा लीजिए।।६।।

अभ्यास

गीत में आये निम्नांकित शब्दों और वाक्यांशों का आशय स्पष्ट करें-

ठोकरें खाना। मझधार। चारों ओर अँधेरा छाना। लिखा लीजिए। एक प्याला।

पाठ-११

परीक्षा

प्रेमचंद

जब रियासत देवगढ़ के दीवान सरदार सुजान सिंह बूढ़े हुए तो परमात्मा की याद आई। जाकर महाराज से विनय की कि दीनबंधु! दास ने श्रीमान् की सेवा चालीस साल तक की, अब मेरी अवस्था भी ढल गई, राज-काज संभालने की शक्ति नहीं रही। कहीं भूल-चूक हो जाए तो बुढ़ापे में दाग लगे। सारी जिंदगी की नेकनामी मिट्टी में मिल जाए।

राजा साहब अपने अनुभवशील नीतिकुशल दीवान का बड़ा आदर करते थे। बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहब ने न माना, तो हारकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली; पर शर्त यह लगा दी कि रियासत के लिए नया दीवान आप ही को खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन देश के प्रसिद्ध पत्रों में यह विज्ञापन निकला कि देवगढ़ के लिए एक सुयोग्य दीवान की जरूरत है। जो सज्जन अपने को इस पद के योग्य समझे, वे वर्तमान सरकार सुजान सिंह की सेवा में उपस्थित हों। यह जरूरत नहीं कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है, मन्दाग्नि के मरीज को यहां तक कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं। एक महीने तक उम्मीदवारों के रहन-सहन, आचार-विचार की देखभाल की जाएगी। विद्या का कम, परन्तु कर्तव्य का अधिक

विचार किया जाएगा। जो महाशय इस परीक्षा में पूरे उतरेंगे, वे इस उच्च पद पर सुशोभित होंगे।

२

इस विज्ञापन ने सारे मुल्क में तहलका मचा दिया। ऐसा ऊँचा पद और किसी प्रकार की कैद नहीं? केवल नसीब का खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना भाग्य परखने के लिए चल खड़े हुए। देवगढ़ में नए-नए और रंग-बिरंग के मनुष्य दिखाई देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ी से उम्मीदवारों का एक मेला सा उतरता। कोई पंजाब से चला आता था, कोई मद्रास से, कोई नए फैशन का प्रेमी, कोई पुरानी सादगी पर मिटा हुआ। पंडितों और मौलवियों को भी अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने का अवसर मिला। बेचारे सनद के नाम रोया करते थे, यहां उसकी कोई जरूरत नहीं थी। रंगीन एमामे, चोगे और नाना प्रकार के अंगरखे और कंटोप देवगढ़ में अपनी सज-धज दिखाने लगे। लेकिन सबसे विशेष संख्या ग्रेजुएटों की थी, क्योंकि सनद की कैद न होने पर भी सनद से परदा तो ढंका रहता है।

सरदार सुजान सिंह ने इन महानुभावों के आदर-सत्कार का बड़ा अच्छा प्रबंध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरों में बैठे हुए रोज़ेदार मुसलमानों की तरह महीने के दिन गिना करते थे। हर एक मनुष्य अपने जीवन को अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छे रूप में दिखाने की कोशिश करता था। मिस्टर अ नौ बजे दिन तक सोया करते थे, आजकल वे बगीचे में

टहलते हुए उषा का दर्शन करते थे। मि. ब को हुक्का पीने की लत थी, आजकल बहुत रात गए किवाड़ बंद करके अंधेरे में सिगार पीते थे। मि. द, स और ज से उनके घरों पर नौकरों के नाक में दम था, लेकिन ये सज्जन आजकल 'आप' और 'जनाब' के बगैर नौकरों से बातचीत नहीं करते थे। महाशय क नास्तिक थे, हक्सले के उपासक, मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मंदिर के पुजारी को पदच्युत हो जाने की शंका लगी रहती थी। मि. ल को किताब से घृणा थी, परंतु आजकल वे बड़े-बड़े ग्रन्थ देखने-पढ़ने में डूबे रहते थे। जिससे बात कीजिए, वह नम्रता और सदाचार का देवता बना मालूम देता था। शर्मा जी घड़ी रात से ही वेद-मंत्र पढ़ने में लगते थे और मौलवी साहब को नमाज और तलावत के सिवा और कोई काम न था। लोग समझते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।

लेकिन मनुष्यों को वह बूढ़ा जौहरी आड़ में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलों में हंस कहां छिपा हुआ है।

३

एक दिन नए फैशनवालों को सूझी कि आपस में हॉकी का खेल हो जाए। यह प्रस्ताव हॉकी के मंजे हुए खिलाड़ियों ने पेश किया। यह भी तो आखिर एक विद्या है। इसे क्यों छिपा रखें। सम्भव है, कुछ हाथों की सफ़ाई ही काम कर जाए। चलिए तय हो गया, फील्ड बन गई, खेल शुरू हो

गया और गेंद किसी दफ्तर के अप्रेंटिस की तरह ठोकरें खाने लगा।

रिसायत देवगढ़ में यह खेल बिल्कुल निराली बात थी। पढ़े-लिखे भलेमानुस लोग शतरंज और ताश जैसे गंभीर खेल खेलते थे। दौड़-कूद के खेल बच्चों के खेल समझे जाते थे।

खेल बड़े उत्साह से जारी था। धावे के लोग जब गेंद को लेकर तेजी से उड़ते तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई लहर बढ़ती चली आती है। लेकिन दूसरी ओर से खिलाड़ी इस बढ़ती हुई लहर को इस तरह रोक लेते थे कि मानो लोहे की दीवार है।

संध्या तक यही धूमधाम रही। लोग पसीने से तर हो गए। खून की गर्मी आंख और चेहरे से झलक रही थी। हांफते-हांफते बेदम हो गए, लेकिन हार-जीत का निर्णय न हो सका।

अंधेरा हो गया था। इस मैदान में जरा दूर हटकर एक नाला था। उस पर कोई पुल न था। पथिकों को नाले में से चलकर आना पड़ता था। खेल अभी बन्द ही हुआ था और खिलाड़ी लोग बैठे दम ले रहे थे कि एक किसान अनाज से भरी हुई गाड़ी लिए हुए उस नाले में आया। लेकिन कुछ तो नाले में कीचड़ था और कुछ उसकी चढ़ाई इतनी ऊँची थी कि गाड़ी ऊपर न चढ़ सकती थी। वह कभी बैलों को ललकारता, कभी पहियों को हाथ से ढकेलता लेकिन बोझ अधिक था और बैल कमजोर। गाड़ी ऊपर को न चढ़ती और चढ़ती भी तो कुछ दूर चढ़ कर फिर खिसककर नीचे पहुंच जाती। किसान बार-बार जोर लगाता और बार-बार झुंझलाकर बैलों को मारता, लेकिन गाड़ी उभरने का नाम न लेती। बेचारा

इधर-उधर निराश होकर ताकता, मगर वहां कोई सहायक नजर न आता। गाड़ी को अकेले छोड़कर कहीं जा भी नहीं सकता। बड़ी आपत्ति में फंसा हुआ था। इसी बीच में खिलाड़ी हाथों में डंडे लिए घूमते-घामते उधर से निकले। किसान ने उनकी तरफ सहमी हुई आंखों से देखा, परन्तु किसी से मदद मांगने का साहस न हुआ। खिलाड़ियों ने भी उसको देखा मगर बंद आंखों से, जिनमें सहानुभूति न थी। उनमें स्वार्थ था, मद था, मगर उदारता और वात्सल्य का नाम भी न था।

४

लेकिन उसी समूह में एक मनुष्य था जिसके हृदय में दया थी और साहस था। आज हॉकी खेलते हुए उसके पैरों में चोट लग गई थी लंगड़ाता हुआ धीरे धीरे चला आता था। अकस्मात उसकी निगाह गाड़ी पर पड़ी। ठिठक गया। उसे किसान की सूरत देखते ही सब बातें ज्ञात हो गई। डंडा एक किनारे रख दिया। कोट उतार डाला और किसान के पास जाकर बोला—मैं तुम्हारी गाड़ी निकाल दूं?

किसान ने देखा एक गठे हुए बदन का लंबा आदमी सामने खड़ा है। झुककर बोला—हुजूर मैं आपसे कैसे कहूं? युवक ने कहा—मालूम होता है, तुम यहां बड़ी देर से फंसे हो। अच्छा, तुम गाड़ी पर जाकर बैलों को साधो मैं पहियों को ढकेलता हूं, अभी गाड़ी ऊपर चढ़ जाती है।

किसान गाड़ी पर जा बैठा। युवक ने पहिए को जोर लगाकर उकसाया। कीचड़ बहुत ज्यादा था। वह घुटनों तक

ज़मीन में गड़ गया, लेकिन हिम्मत न हारी। उसने फिर जोर किया, उधर किसान ने बैलों को ललकारा। बैलों को सहारा मिला, हिम्मत बंध गई, उन्होंने कंधे झुकाकर एक बार जोर किया तो गाड़ी नाले के ऊपर थी ।

किसान युवक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बोला—महाराज, आपने आज मुझे उबार लिया, नहीं तो सारी रात मुझे यहां बैठना पड़ता।

युवक ने हंसकर कहा—अब मुझे कुछ इनाम देते हो? किसान ने गंभीर भाव से कहा—नारायण चाहेंगे तो दीवानी आपको ही मिलेगी।

युवक ने किसान की तरफ गौर से देखा। उसके मन में एक संदेह हुआ, क्या यह सुजान सिंह तो नहीं है? आवाज़ मिलती है, चेहरा-मोहरा भी वही। किसान ने भी उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। शायद उसके दिल के संदेह को भांप गया। मुस्कराकर बोला—गहरे पानी में पैठने से ही मोती मिलता है।

५

निदान महीना पूरा हुआ। चुनाव का दिन आ पहुंचा। उम्मीदवार लोग प्रातःकाल से ही अपनी किस्मतों का फैसला सुनने के लिए उत्सुक थे। दिन काटना पहाड़ हो गया। प्रत्येक के चेहरे पर आशा और निराशा के रंग आते थे। नहीं मालूम, आज किसके नसीब जागेंगे। न जाने किस पर लक्ष्मी की कृपादृष्टि होगी।

संध्या-समय राजा साहब का दरबार सजाया गया। शहर के रईस और धनाढ्य लोग, राज्य के कर्मचारी और दरबारी तथा दीवानी के उम्मीदवारों का समूह, रंग-बिरंगी, सज-धज बनाये दरबार में आ बिराजे! उम्मीदवारों के कलेजे धड़क रहे थे।

जब सरदार सुजान सिंह ने खड़े होकर कहा—मेरे दीवानी के उम्मीदवार महाशयो ! मैंने आप लोगों को जो कष्ट दिया है, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। इस पद के लिए ऐसे पुरुष की आवश्यकता थी जिसके हृदय में दया हो और साथ-साथ आत्मबल। हृदय वह जो उदार हो, आत्मबल वह जो आपत्ति का वीरता के साथ सामना करे और इस रियासत के सौभाग्य से हमें ऐसा पुरुष मिल गया। ऐसे गुणवाले संसार में कम हैं और जो हैं, वे कीर्ति और मान के शिखर पर बैठे हुए हैं, उन तक हमारी पहुंच नहीं। मैं रियासत को पंडित जानकीनाथ-सा दीवान पाने की बधाई देता हूं।

रियासत के कर्मचारियों और रईसों ने जानकीनाथ की तरफ देखा। उम्मीदवार दल की आंखे उधर उठीं, मगर उन आंखों में सत्कार था, इन आंखों में ईर्ष्या।

सरदार साहब ने फिर फरमाया, आप लोगों को यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी कि जो पुरुष स्वयं जख्मी होकर भी एक गरीब किसान की भरी हुई गाड़ी को दलदल से निकालकर नाले के ऊपर चढ़ा दे उसके हृदय में साहस, आत्मबल और उदारता का वास है। ऐसा आदमी गरीबों को कभी न सतावेगा। उसका संकल्प दृढ़ है उसके चित्त को स्थिर रखेगा। वह चाहे धोखा खा जाए। परंतु दया और धर्म से कभी न हटेगा।

अभ्यास

१. सरदार सुजान सिंह ने महाराज से क्या प्रार्थना की?

२. विज्ञापन की विशेषता क्या थी?

३. दीवान पद के प्रत्याशियों ने महाराज के यहाँ अपने एक महीने किस प्रकार व्यतीत किये?

४. पंडित जानकीनाथ दीवान पद पाने में कैसे सफल हुए?

५. सरदार सुजान सिंह ने पंडित जानकीनाथ की प्रशंसा किन शब्दों में की?

पाठ-१२

हमारा शरीर

हमारा यह स्थूल शरीर पञ्चभौतिक है। इसकी उत्पत्ति पाँच महाभूतों अथवा स्थूल भूतों से हुई है। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में -

क्षिति जल पावक गगन समीरा।

पञ्च रचित यह अधम सरीरा।।

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पाँच महाभूतों के मिश्रण से बना हुआ है हमारा यह स्थूल शरीर। ये पाँच महाभूत पञ्चतन्मात्राओं (पाँच सूक्ष्मभूतों) का परिणाम हैं। ये पञ्चतन्मात्राएँ ही इस समस्त ब्रह्माण्ड का उपादान कारण हैं। अव्यक्त प्रकृति इन्हीं के रूप में पहले पहल व्यक्त हुई। प्रकृति त्रिगुणात्मक है। उसमें सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण हैं अतः प्रकृति के इस समस्त प्रपञ्च में ये तीनों गुण हैं। जीवात्मा और परमात्मा ये दोनों प्रकृति से भिन्न तत्व हैं अतः इनमें ये तीनों गुण नहीं हैं। इसी कारण जीवात्मा एवं परमात्मा को निर्गुण या गुणातीत कहा जाता है।

इस स्थूल शरीर का जन्म होता है। इसमें बचपन, जवानी और बुढ़ापा आता है और फिर किसी दिन मृत्यु के रूप में इसका अन्त भी हो जाता है। 'भस्मान्तं शरीरम्' अर्थात् इस शरीर को अन्ततः मिट्टी या राख हो जाना है। शास्त्रों में इस शरीर की उपमा रथ के साथ दी गई है जो हमें जीवनयात्रा के लिए प्राप्त हुआ है -

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।

इन्द्रियाणि हयान् आहु:मनः प्रग्रहमेव च।।

अर्थात् आत्मारथी (सवार) है, शरीर रथ है। इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं और मनः उन्हें नियन्त्रण में रखने की लगाम है।

इस शरीर के सुस्वास्थ्य के लिए तीन साधन बताये गये हैं। स्वास्थ्य के इच्छुक को हितभुक्, मितभुक् और ऋतभुक् होना चाहिए अर्थात् हितकारक पदार्थों को खाना चाहिए। थोड़ा खाना चाहिए और नेक कमाई का खाना चाहिए। अन्न का विकार (परिवर्तित रूप) होने से यह स्थूल शरीर अन्नमय कोश कहलाता है।

इस प्रकार स्थूल शरीर नश्वर है। जीवात्मा का देहान्तर में प्रवेश सूक्ष्म शरीर के माध्यम से होता है। जीवात्मा अपनी मुक्ति पर्यन्त इस सूक्ष्म शरीर के साथ बँधा हुआ है। उसके शुभ और अशुभ कर्मों के संस्कार इस सूक्ष्म शरीर पर अमिट रूप में अंकित रहते हैं। यह एक प्रकार से रिकार्डकीपर है। इन संस्कारों के द्वारा ही उसे शुभ या अशुभ गति प्राप्त होती है। यह सूक्ष्म शरीर मनुष्य के हृदय के पास दोनों छातियों के मध्य में जो गढ़ा जैसा है, वहाँ रहता है। अंगूठे के बराबर है। ज्ञान की आँखों के बिना दिखाई नहीं देता। सूक्ष्म शरीर का दूसरा नाम लिंग शरीर भी है।

सूक्ष्म शरीर में सतरह अवयव (अंग) हैं। बुद्धि, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच वायु। अन्तःकरण की निश्चयात्मक वृत्ति का नाम बुद्धि है और संकल्पात्मक वृत्ति का नाम मन है। इन दोनों का जन्म आकाश आदि सूक्ष्मभूतों (पाँच तन्मात्राओं) के सम्मिलित सात्त्विक अंश से होता है। श्रोत्र (कान), त्वक् (चमड़ी), चक्षु (आँख), रसना (जीभ) और घ्राण (नाक) ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है। इन पाँचों की उत्पत्ति आकाश

आदि पाँच सूक्ष्मभूतों के सात्त्विक अंश से पृथक् पृथक् क्रम से होती है, यथा-आकाश के सात्त्विक अंश से श्रोत्र, वायु के सात्त्विक अंश से त्वचा आदि। उपर्युक्त बुद्धि ज्ञानेन्द्रियों सहित विज्ञानमयकोश हो जाती है। अपने को कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी आदि मानने वाला यही व्यावहारिक जीव है जो लोक, परलोक में गति करता है। ज्ञानेन्द्रियों के साथ मन मिलकर मनोमय कोश हो जाता है। वाक् (वाणी), पाणि (हाथ), पाद (पैर), पायु (गुदा) और उपस्थ (भोगेन्द्रिय) ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। ये आकाश आदि पाँच सूक्ष्मभूतों के रजोगुणी अंश से पृथक् पृथक् क्रम से होती हैं, यथा - आकाश के रजोगुणी अंश से वाणी, वायु के रजोगुणी अंश से हाथ आदि। प्राण (नासिका द्वार से आने जाने वाली वायु), अपान (गुदा मार्ग से निकलने वाली वायु), व्यान (सब ओर गतिवाली शरीर के अन्दर वर्तमान वायु), उदान (गले में रहने वाली डकार आदि का कारण बनने वाली वायु), समान (शरीर के बीच रहकर खान पान का समीकरण करने वाली वायु) ये पाँच वायु हैं। ये पाँचों आकाश आदि पाँच सूक्ष्म भूतों के सम्मिलित रजोगुणी अंश से उत्पन्न होती है। पाँच कर्मेन्द्रियों सहित ये पाँच वायु प्राणमय कोश हो जाते हैं।

इन तीनों कोशों में विज्ञानमयकोश ज्ञान की शक्ति वाला है और कर्ता है। मनोमय कोश इच्छा की शक्ति वाला होने से करण है और प्राणमय कोष क्रिया की शक्ति वाला होने से कार्य रूप है। ये तीनों कोश ही मिलकर सूक्ष्म शरीर कहलाते हैं।

सूक्ष्म शरीर का संक्रमण अथवा गति (देहान्तर प्राप्ति या मोक्ष) ज्ञान-अज्ञान, धर्म-अधर्म, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य, सिद्धि-असिद्धि, तुष्टि-अतुष्टि रूप जिन भावों के अधीन होता है उन्हें कारण कहा जाता है। जीवात्मा का लक्ष्य परमपद अथवा मोक्ष की प्राप्ति है। परमात्मा का सान्निध्य पाये बिना आनन्द की प्राप्ति नहीं हो

सकती। आनन्दमय कोश वही है। प्रकृति केवल सत् है अस्तित्व मात्र है। जीव सत् और चित् है अर्थात् उसमें अस्तित्व के अतिरिक्त चैतन्य भी है किन्तु सच्चिदानन्द अर्थात् सत् चित् और आनन्द रूप केवल परमात्मा है। उसी की प्राप्ति के लिए स्तुति, प्रार्थना और उपासना की जाती है।

अभ्यास

(१) स्थूल शरीर किन तत्त्वों से बना है?

(२) स्थूल शरीर में मन, आत्मा और इन्द्रियों का क्या स्थान है?

(३) सूक्ष्म शरीर में सतरह अवयव कौन से हैं?

(४) प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोशों से क्या अभिप्राय है?

(५) जीवात्मा का चरम लक्ष्य क्या है?

जो प्यार एक मुस्कान द्वारा व्यक्त होता है वह हज़ारों नमस्कार द्वारा भी व्यक्त नहीं हो पाता।

पाठ-१३

भजन

जय जय पिता परम आनन्द दाता।
जगदादि कारण मुक्ति प्रदाता ।।१।।

अनन्त और अनादि विशेषण हैं तेरे।
तू सृष्टि का स्रष्टा औ धर्ता संहर्ता ।।२।।

सूक्ष्म से सूक्ष्म तू है स्थूल इतना।
कि जिसमें यह ब्रह्माण्ड सारा समाता।।३।।

मैं लालित व पालित हूँ पितृस्नेह का।
यह प्राकृत सम्बन्ध है तुझसे ताता।।४।।

करो शुद्ध निर्मल मेरी आत्मा को।
करूँ मैं विनय नित्य सायं व प्रातः ।।५।।

मिटाओ मेरे भय को आवागमन के।
फिरूँ न जनम पाता औ बिलबिलाता।।६।।

बिना तेरे है कौन दीनन का बन्धु।
कि जिसको मैं अपनी अवस्था सुनाता।।७।।

अमीरस पिलाओ कृपा करके मुझको।
रहूँ सर्वदा तेरी कीर्ति को गाता ।।८।।

अभ्यास

(१) अनन्त और अनादि का अर्थ बताकर यह भी बताओ कि ये किसके विशेषण बताये गये हैं?

(२) परमात्मा की स्थूलता को यहाँ किस प्रकार प्रकट किया गया है?

(३) कवि प्रातः सायं प्रभु से क्या प्रार्थना करता रहता है

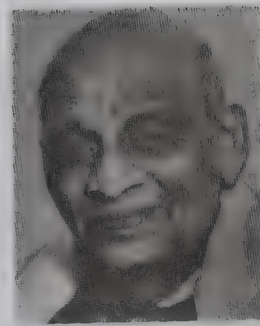
(४) भक्त को कौन सा भय है?

(५) किसी तीसरे को अपनी अवस्था क्यों नहीं सुनाई जा पाती?

मुस्कुराहट मैत्री पर मुहर लगा सकती है पर दो को जोड़ने का काम आँसू ही कर सकते हैं।

पाठ-१४

लौह पुरुष सरदार पटेल



सरदार् बल्लभभाई पटेल निर्भीक, दूरदर्शी और साहसी नेता थे। ख़तरों से खेलना उन्हें प्रिय था। उन्होंने एक बार कहा था - 'मेरे साथ कोई खिलवाड़ नहीं कर सकता, मैं किसी ऐसे काम में नहीं पड़ता जिसमें ख़तरा न हो। जो लोग आपत्तियों को आमन्त्रण दें उनकी सहायता के लिए मैं सदा तैयार हूँ।'' एक बार मौलाना शौकत अली ने कहा था - ''बल्लभभाई बरफ़ से ढके ज्वालामुखी की तरह हैं।'' उनके हृदय में हमेशा एक आग जला करती थी, ऐसी आग जो एक ही बार में हज़ारों को भस्म करने की क्षमता रखती थी।

बल्लभभाई जन्मजात देश भक्त थे। जब देश में गाँधी की आँधी चली तो बल्लभभाई भी उसके प्रभाव में आये बिना नहीं रहे। अच्छी भली वकालत कर रहे थे, पर देश की आज़ादी का सवाल आया तो एकदम उसे छोड़कर स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल हो गये। बोरसद और बारदोली के सफल सत्याग्रह के नेता के रूप में वे उभरे और गाँधी जी ने उनसे प्रभावित होकर उन्हें 'सरदार' की उपाधि से विभूषित किया। अपनी अनूठी प्रतिभा, विलक्षण नेतृत्व शक्ति, चिन्तनशील मस्तिष्क और विलक्षण तार्किकता एवं साहस के बल पर गुजरात का यह नेता कांग्रेस का अध्यक्ष बन गया। अनेक बार जेल यात्राएँ कीं। देश में १९४२ में स्वाधीनता के अन्तिम युद्ध का ऐलान हुआ। सरदार पटेल भी अन्य नेताओं के साथ अहमद नगर जेल में बन्दी बनाये गये।

पन्द्रह जून १९४५ को सरदार पटेल भी अन्य नेताओं सहित जेल से मुक्त किये गये। उन दिनों अंग्रेज़ सरकार ने भारत को आज़ादी देने का संकल्प घोषित किया था। मुस्लिम लीग इस रास्ते में रुकावटें डाल रही थी। सरदार पटेल ने मुस्लिम लीग को खूब खरी खरी सुनाई जिससे लोग उनके विरोधी बन गये। इस पर सरदार पटेल ने चेतावनी के स्वर में गर्जना की, 'हम आज़ादी के लिए अंग्रेजों से भी लड़ेंगे और जो मुसलमान रास्ते में रोड़ा बनेंगे तो उनसे भी लड़ेंगे।

जिन्ना ने कहा था। 'मुसलमानों की मंजूरी के बग़ैर आज़ादी दी गई तो हिन्दुस्तान में तलवारें चल जायेंगी। खून की नदियाँ बह जायेंगी।' इसका मुँह तोड़ जवाब पटेल ने दिया, 'तलवार का जवाब तलवार से दिया जायेगा खून की नदियाँ बहाने वाले को पूरी सज़ा दी जायेगी।'

पटेल ने देश की जनता को समझाया कि आत्मरक्षा के लिए हथियार उठाना हिंसा नहीं है। अहिंसा कमज़ोर का नहीं, बहादुर का हथियार है। कायर बनकर मरने की अपेक्षा हथियार चलाते हुए मरना अधिक अच्छा है।

देश स्वतन्त्र हुआ, तो पटेल उपप्रधानमन्त्री के साथ साथ गृहमन्त्री बने। अपने पद का संचालन जिस विलक्षण कौशल से पटेल ने किया उससे देशवासी हैरान रह गये। अपनी दूरदर्शी राजनीतिज्ञता से देश की पौने छह सौ देशी रियासतों की समस्या उन्होंने हल की, उससे दुनिया के राजनीतिज्ञ भी हैरान रह गये। सरदार पटेल ने जोधपुर, ग्वालियर, जयपुर, पटियाला जैसी विशाल शक्तिशाली रियासतों को भारतीय संघ में मिला लिया। किसी को पुचकार कर तो किसी को आँखें दिखाकर। उन्होंने अंग्रेजों के विभाजन के बोये बीजों को उगने से पहले ही कतर दिया और मुस्लिम लीग की चालों को विफल कर डाला। गृहमंत्री बनते समय पटेल ने घोषणा की कि भारत सरकार

रियासतों के साथ परस्पर सहयोग की नीति से चलेगी। रियासतों को याद रखना चाहिए कि यदि वे जनता की आवाज़ को नहीं जानेंगी तो उन्हें अराजकता का सामना करना पड़ेगा। इसलिए उनका हित इसी में है कि वे भारत सरकार के साथ मित्रता निभाते हुए शासन करें। उन्होंने यह भी स्पष्ट घोषणा की थी कि जो रियासत जनता की राय को न मानकर किसी और देश से सन्धि करेगी उसे हम अपना शत्रु समझेंगे। पटेल की नीति से जूनागढ़, कश्मीर और हैदराबाद को छोड़कर सभी रियासतों ने भारत सरकार से सन्धि कर ली थी।

जूनागढ़ में पाकिस्तान ने अपने पाँव फैलाने चाहे थे। पटेल ने जूनागढ़ के नवाब की चालों को मटियामेट कर दिया। नवाब रियासत छोड़कर भाग गया। जूनागढ़ में जनता का शासन स्थापित हो गया। पटेल ने १२ नवम्बर सन् ४७ को जूनागढ़ पहुँच कर हैदराबाद को भी चेतावनी दी, 'यदि हैदराबाद का नवाब भी उल्टी चालें चलता रहा तो उसका भविष्य भी वही होगा जो जूनागढ़ के नवाब का हुआ है।

हैदराबाद की समस्या हल करने में कुछ देर लगी। वहाँ का नवाब भारत में ही एक दूसरे पाकिस्तान के सपने लेने लगा था। पटेल ने हैदराबाद के नवाब को चेतावनी दी कि वे पाकिस्तान का हस्तक्षेप तनिक भी बर्दाश्त नहीं करेंगे। नवाब का दिमाग इतना चढ़ गया था कि प्रधानमन्त्री पं० नेहरू जब हैदराबाद गये तो वह उनकी अगवानी करने नहीं आया। पटेल को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने नवाब को कड़े शब्दों मे चेतावनी दी कि लगता है कि तुम्हारा दिमाग आसमान पर पहुँच गया है। अब हमें उसे ठिकाने पर लाना होगा। इसका परिणाम यह हुआ कि पं० नेहरू के दोबारा हैदराबाद जाने पर नवाब उनकी अगवानी के लिए एक घण्टा पहले ही बेगमपेट हवाई अड्डे पर इन्तज़ार कर रहा था।

पटेल ने पुलिस कार्यवाही करके हैदराबाद को भारतीय स का एक भाग बनाकर नवाब के सपनों को चकनाचूर कर दिया।

अब केवल एक रियासत रह गई थी - जम्मूकश्मीर उ हल करने की जब भी कोई बात आती तो पटेल नेहरू जी क तरफ इशारा कर देते। वही समस्या आज तक भारत के लि नासूर बनी खड़ी है। इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि अग वे जल्दी हमसे विदा नहीं हो जाते तो यह समस्या भी देर सवे हल होकर रहती।

रियासतों के विलय के बाद देश में समस्या थी साम्प्रदायिकता की। उन्हें सूचना थी कि देश में ऐसे तत्त्व मौजूद हैं जो चोरी छुपे पाकिस्तान की हिमायत कर रहे हैं। पटेल को इसका बड़ा रोष था। उन्होंने छह जनवरी १९४८ को लखनऊ के भाषण में अपनी नाराज़गी प्रकट की थी।

पटेल ने हिन्दू सभाइयों को कहा - यदि आप अपने को हिन्दू धर्म की रक्षा के ठेकेदार समझते हैं तो यह भूल है। हिन्दू धर्म बड़ा उदार है। उसमें बड़ी सहिष्णुता है।

पाकिस्तान यदि डरता था तो केवल पटेल से ही। कलकत्ता में भाषण करते हुए उन्होंने कड़े शब्दों में चेतावनी दी थी - ''हम पाकिस्तान से इतना ही चाहते हैं कि वह हमारे मामलों में दखल न दे। तुम्हें पाकिस्तान मिल गया। जैसा मन में आये उसका इस्तेमाल करो। ''पाकिस्तान वाले कहते हैं कि उसके दुश्मन उसे तबाह करना चाहते हैं। मैं कहता हूँ यह तबाही आयेगी तो बाहर से नहीं, भीतर से ही आयेगी। हमने पाकिस्तान को बड़ी उदारता से मुँहमाँगी चीज़ें दे दीं। लेकिन हम यह बर्दाश्त नहीं करेंगे कि वह उससे गोलाबारूद बनाकर हम पर हमला करे।'' पटेल की चेतावनो आज भी सर्वथा प्रासंगिक रही है।

पटेल सच्चे अर्थों में लौह पुरुष थे। वे शत्रु के लिए

ज्वालामुखी थे तो अपनों के लिए हिम जैसे शीतल। वे जीवनभर देश के लिए जिये और देश के लिए मरे। वे जल में कमल के समान रहे, सर्वथा निष्कलंक जीवन। प्रभु उन्हें कुछ वर्ष और भारत माता की सेवा करने का अवसर देता तो आज देश का नक्शा ही कुछ और होता।

अभ्यास

(१) ''बल्लभभाई बरफ से ढके ज्वालामुखी की तरह है।'' का भाव बतायें।

(२) 'बल्लभभाई जन्मजात देशभक्त थे' सिद्ध करें।

(३) 'मेरे साथ कोई खिलवाड़ नहीं कर सकता' स० पटेल की इस उक्ति की सार्थकता उनके कार्यों के आधार पर स्पष्ट करें।

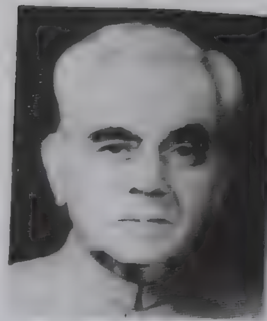
(४) मुस्लिमलीगी लोग स० पटेल से क्यों नाराज़ थे?

(५) जूनागढ़ तथा हैदराबाद जैसी रियासतों की समस्या को हल करने वाला स० पटेल कश्मीर की समस्या का हल क्यों न कर पाया?

नर समाज का भाग्य एक है,
वह श्रम, वह भुजबल है।
जिसके आगे झुकी हुई पृथ्वी
विनीत नभतल है ।।

पाठ-१५

लाला सूरजभान



डी०ए०वी० आन्दोलन के स्वर्णिम इतिहास में लाला सूरजभान का नाम प्रख्यात शिक्षाविद्, कुशल प्रशासक एवं जागरूक संगठनकर्ता के रूप में सदा स्मरणीय रहेगा। अपनी प्रतिभा एवं कर्मठता के बल पर उन्होंने स्कूल अध्यापक के रूप में जीवन का प्रारम्भ कर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के श्लाघ्य पद को भव्यता के साथ अलंकृत किया।

लाला जी का जन्म पहली नवम्बर १९०४ में पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के डेरा इस्माइलखाँ नामक ज़िले में हुआ था जो अब पाकिस्तान का भाग है। उनके बाबा चौधरी लालचन्द अपने कस्बे के प्रतिष्ठित नागरिक थे। हिन्दू समुदाय के तो वे सर्वसम्मत नेता थे। पिता तोताराम ने सत्ताईस वर्ष तक डाक्टर के रूप में अपने क्षेत्र की सेवा का यश प्राप्त किया था। सिक्ख, पठान तथा हिन्दू सभी उनका आदर करते थे।

बालक सूरजभान की शिक्षा नवम श्रेणी तक बन्नू के सरकारी हाईस्कूल में हुई। दसवीं (मैट्रिक) के लिए वह डी०ए०वी० हाईस्कूल लाहौर में दाखिल हुए। उन्होंने यह परीक्षा विश्वविद्यालय में सातवाँ स्थान प्राप्त करके पास की। इण्टरमीडिएट तथा बी०ए० की परीक्षा उन्होंने डी०ए०वी० कालेज में ही प्रथम श्रेणी में की। एम०ए० इंगलिश के लिए वे गवर्न० कालेज में दाखिल हुए और विश्वविद्यालय में विशेष योग्यता के अंक प्राप्त करके यह परीक्षा उत्तीर्ण की।

लाला सूरजभान पक्के आर्यसमाजी थे। अपने प्रारम्भिक

जीवन में ही वे आर्यसमाज की मान्यताओं और शिक्षाओं से प्रभावित हो चुके थे। उनके पिता डा० तोताराम कट्टर आर्यसमाजी थे। बालक सूरजभान को उनसे बड़ी प्रेरणा मिली। फलतः वे आर्यसमाज के सत्संगों में जाने लगे और भाषण भी देने लगे। लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज और बख्शी टेकचन्द ने उनकी इस ओर रुचि को और भी बढ़ाया। आगे चलकर लाला सूरजभान आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान भी बने।

लाला सूरजभान चरित्र सम्बन्धी उदात्त गुणों से भरपूर थे वे आवेश में नहीं आते थे। उन्हें बरगलाया नहीं जा सकता था। वे विरोधियों की बातों को भी धैर्यपूर्वक सुनते थे और फिर उनका सन्तुलित उत्तर देते थे।

बख्शी रामरत्न जी के डी०ए०वी० कालेज का प्रिंसीपल बन जाने पर लाला सूरजभान डी०ए०वी० स्कूल के अध्यापक से मुख्याध्यापक बन गये। उन्होंने स्कूल के स्तर एवं व्यवस्था को न केवल सँभाला ही अपितु उसे उठाया, सँवारा। उन्होंने इसे पंजाब का सर्वश्रेष्ठ स्कूल बना दिया। उनकी प्रतिभा के इस चमत्कार को देखकर डी०ए०वी० मैनेजिंग कमेटी ने लाला सूरजभान को उच्च अध्ययन के लिए इंग्लैंड भेजने का निश्चय किया। इस प्रकार श्री सूरजभान १९३५ में इंग्लैंड गये और दो वर्ष बाद टीचरी का डिप्लोमा और लन्दन यूनीवर्सिटी की एजूकेशन में एम०ए० करके लौटे।

सन् १९४३ में लाला जी डी०ए०वी० कालेज शोलापुर के प्रिंसीपल बने। उस समय यह संस्था तीन वर्ष का शिशु थी। लाला सूरजभान ने अगले तीन वर्षों में इसे बम्बई विश्वविद्यालय में प्रथम कोटि का कालेज बना दिया।

आजीवन सदस्यता की ठीक २० वर्ष की अवधि पूर्ण करके लाला जी १९४६ में डी०ए०वी० कालेज प्रबन्धकर्त्री

समिति की सेवा से मुक्त हो गये। इस अवधि में उन्हो डी०ए०वी० स्कूल लाहौर तथा डी०ए०वी० कालेज शोलापुर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ी।

तदनन्तर वे लाहौर लौट आये। यहाँ वे पंजा विश्वविद्यालय के पुनः निर्विरोध सदस्य निर्वाचित हुए। तभ भारत पर विभाजन की गाज गिरी और लाला सूरजभान को भ भारत आना पड़ा। यहाँ उनकी योग्यता एवं क्षमता को जानक भारत सरकार ने उन्हें सहायक शैक्षिक परामर्शदाता नियुक्त किया। भारत सरकार उनकी योग्यता से इतनी प्रभावित हुई कि उन्हें केन्द्रीय शिक्षा संस्थान और शोध केन्द्र का संस्थापक प्राचार्य नियुक्त कर दिया। भारत सरकार के अधीन चलने वाले दो पब्लिक स्कूलों में से एक 'लारेंस पब्लिक स्कूल, लवडेल, नीलगिरि के भी वे प्रिंसीपल रहे। इस पद को अपनाने वाले वे पहले भारतीय थे।

तीन वर्ष पश्चात् डी०ए०वी० कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति ने उनसे डी०ए०वी० कालेज जालन्धर का प्राचार्य के रूप में प्रबन्ध सँभालने की प्रार्थना की। डी०ए०वी० के प्रति सहज लगाव के कारण उन्होंने सरकार के उच्च पद को त्याग दिया। डी०ए०वी० कालेज जालन्धर की लालाजी ने तेरह वर्ष सेवा की। उन्होंने इस संस्था को देश की सर्वोच्च संस्थाओं में गणनीय बना दिया। न केवल भवनों के विस्तार में अपितु विश्वविद्यालय के परिणामों तथा पाठ्यातिरिक्त गतिविधियों खेल-कूद, भाषण, गायन, नाटक आदि प्रतियोगिताओं में भी यह संस्था अग्रगण्य बन गई। सन् १९५२ और १९५८ में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय की लेजिस्लेटिव कौंसिल का चुनाव ग्रेजुएट कान्स्टीचुएंसी से लड़ा और दोनों बार सर्वाधिक मत प्राप्त किए।

सन् १९६२ में लालाजी कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त हुए जो कि शिक्षा शास्त्री के लिए सर्वोच्च

सम्मानित पद माना जाता है। सन् १९६५ में लाला जी पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने। इन दोनों विश्वविद्यालयों में उन्होंने अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप बनाई। लालाजी ने अनेक बार विदेश यात्राएँ करके वहाँ के शैक्षिक सम्मेलनों में भाग लिया। इनमें टोकियो (१९६५), मिकिंगन (१९६७), सिडनी (१९६९) और मौनट्रिअल (१९७०) उल्लेख्य हैं। उनकी शैक्षिक देन के आधार पर सन् १९७१ में उन्हें राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया।

लाला सूरजभान प्रख्यात् लेखक तथा प्रभावपूर्ण वक्ता थे। उनकी दर्जनों पुस्तकें अपने अपने विषय में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

पंजाब विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने पर सन् १९७४ में लाला सूरजभान पुनः डी०ए०वी० में लौट आये और डी०ए०वी० कालेज प्रबन्धक समिति के सदस्यों की सामूहिक प्रार्थना पर उन्होंने अपना आवास चण्डीगढ़ से बदलकर दिल्ली किया और डी०ए०वी० का प्रधान पद स्वीकारा। उनके पथनिर्देश में अनेक डी०ए०वी० संस्थाओं की स्थापना हुई। डी०ए०वी० पब्लिक स्कूलों के संस्थापक पिताओं में लाला जी की गणना सर्वप्रथम की जाती है। अपने कार्यकाल में उन्होंने डी०ए०वी० के रिजर्वकोष में १५ लाख रुपये एकत्र किये। कार्याधिक्य वश अस्वस्थ बने लाला जी २८ अगस्त १९८० को पार्थिव शरीर त्याग कर यशः शेष रह गये।

अभ्यास

(१) लाल सूरज भान का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

(२) लाला सूरज भान ने किन किन संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त की?

(३) लाल सूरज भान को आर्यसमाज की ओर आकर्षित क
में किन किनका हाथ रहा?

(४) भारत सरकार ने लाला सूरजभान की प्रतिभा का कि
रूप में सम्मान किया?

(५) डी०ए०वी० संस्थाओं की लाला सूरज भान ने कि
किस रूप में सेवा की?

वास्तविक सौन्दर्य जो दूसरों के लिए आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बनता है शरीर के बाहरी कलेवर या दिखावे से बहुत कम सम्बन्ध रखता है। वास्तविक सौन्दर्य सुन्दर स्वभाव है जिसका शरीर की बनावट, गठन या बाह्य सुन्दरता से कोई सम्बन्ध नहीं। चरित्र की सुन्दरता ही वह भीतरी ज्योति है जो अपने चारों ओर के वातावरण को शोभा तथा आकर्षणपूर्ण बना देती है।

पाठ-१६

शरण याचना

शरण अपनी में रख लीजे, दयामय दास हूँ तेरा।
तुझे तजकर कहाँ जाऊँ, हितू को और है मेरा।।१।।
भटकता हूँ मैं मुद्दत से, नहीं विश्राम पाता हूँ।
दया की दृष्टि से देखो, नहीं तो डूबता बेड़ा।।२।।
सताया राग द्वेषों का, तपाया तीन तापों का।
दुखाया जन्म मृत्यु का, हुआ तंग हाल है मेरा।।३।।
दुखों को मेटने वाला, तुम्हारा नाम सुनकर मैं।
शरण में आ गिरा अब तो, भरोसा नाथ है तेरा।।४।।
क्षमा अपराध कर मेरे, फ़कत अब आस है तेरी।
दया मुझ दीन पर करके, बना लो नाथ निज चेरा।।५।।

अभ्यास

(१) भक्त भगवान् को तजकर कहीं और जाना क्यों नहीं चाहता?
(२) यहाँ विश्राम न मिलने का कारण क्या बताया गया है?
(३) हमें सताने वाले, तपाने वाले और दुखाने वाले कौन हैं?
(४) परमात्मा के नाम में कौन सा गुण है?
(५) भक्त को किससे किस प्रकार की आस है?

पाठ-१७

आर्यसमाज की मान्यताएँ

(आर्योद्देश्य रत्नमाला से)

(१) ईश्वर - जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य है, जो केवल चेतनामात्र वस्तु है, तथा जो अद्वितीय सर्वशक्तिमान्, सत्यगुण वाला है और जिसका स्वभा अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु औ अजन्मादि है जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सर्व जीवों को पाप-पुण्य के फल ठीक ठीक पहुँचान है, उसको ईश्वर कहते हैं।

(२) धर्म - जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपातरहित न्याय सर्वहित करना है, जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होनेसे सब मनुष्यों के लिए यही एक मानने योग्य है उसको 'धर्म' कहते हैं।

(३) अधर्म - जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर और पक्षपात सहित अन्यायी होके बिना परीक्षा करके अपना ही हित करना है, जो अविद्या हठ अभिमान क्रूरतादि दोषयुक्त होने के कारण वेद विद्या से विरुद्ध है, और सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य है, वह अधर्म कहाता है।

(४) पुण्य - जिसका स्वरूप विद्यादि शुभ गुणों का दान और सत्य भाषणादि सत्याचार का करना है उसको 'पुण्य' कहते हैं।

(५) पाप - जो पुण्य से उल्टा और मिथ्याभाषणादि करना है, उसको 'पाप' कहते हैं।

(६) **सत्यभाषण** - जैसा कुछ अपने आत्मा में हो और असम्भवादि दोषों से रहित करके सदा वैसा ही बोले उसको सत्य भाषण कहते हैं।

(७) **स्वर्ग** - जो विशेष सुख और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है, वह स्वर्ग कहाता है।

(८) **नरक** - जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है, उसको 'नरक' कहते हैं।

(९) **विद्या** - जिससे ईश्वर से लेके पृथ्वी पर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य होकर उपकार लेना होता है, इसका नाम 'विद्या' है।

(१०) **अविद्या** - जो विद्या से विपरीत है, भ्रम अन्धकार और अज्ञानरूप है, इसको 'अविद्या' कहते हैं।

(११) **स्तुति** - जो ईश्वर या किसी दूसरे पदार्थ के गुण ज्ञान, कथन-श्रवण और सत्यभाषण करना है, वह 'स्तुति' कहाती है।

(१२) **प्रार्थना** - अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिए परमेश्वर वा किसी सामर्थ्य वाले मनुष्य के सहाय लेने को 'प्रार्थना' कहते हैं।

(१३) **उपासना** - जिससे ईश्वर ही के आनन्द स्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है, उसको 'उपासना' कहते हैं।

(१४) **निर्गुणोपासना** - शब्द, स्पर्शरूप, रस, गन्ध, संयोग, वियोग, हल्का, भारी, अविद्या, जन्म-मरण और दुःख आदि गुणों से रहित परमात्मा को जानकर जो उसकी उपासना करनी है, उसको 'निर्गुणोपासना' कहते हैं।

(१५) **सगुणोपासना** - सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, नित्य, आनन्द, सर्वव्यापक, एक सनातन, सर्वकर्ता, सर्वाधार, सर्वस्वामी, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्गामी, मंगलमय, सर्वानन्दप्रद, सर्व पिता, सब जगत् का रचने वाला, न्यायकारी, दयालु आदि सत्य गुणों से युक्त जान के जो ईश्वर की उपासना करता है,

सो 'सगुणोपासना' कहाती है।

(१६) मुक्ति - जिससे सब बुरे काम और जन्म मरणा
दुःखसागर से छूटकर सुखरूप परमेश्वर को प्राप्त होके सुख
में रहना है, वह 'मुक्ति' कहाती है।

(१७) मनुष्य - जो विचार के बिना किसी काम को न क
उसका नाम 'मनुष्य' है।

(१८) आर्य - जो श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्
विद्यादि गुणयुक्त और आर्यावर्त देश में सब दिन से रहने वाले
हैं, उनको 'आर्य' कहते हैं।

(१९) यज्ञ - जो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त व जो
शिल्प व्यवहार और पदार्थ विज्ञान जो कि जगत् के उपकार के
लिए किया जाता है, उसको 'यज्ञ' कहते हैं।

(२०) स्वभाव - जिस वस्तु का जो वास्तविक गुण है जैसे
कि अग्नि में रूप और दाह, अर्थात् जब तक वह वस्तु रहे
तब तक उसका वह गुण भी नहीं छूटता, इसलिए इसको
'स्वभाव' कहते हैं।

अभ्यास

अपने शब्दों में निम्नांकित का स्वरूप बतायें-
धर्म, स्वर्ग, प्रार्थना, सगुणोपासना, स्वभाव।

मनुष्य की सच्चाई का एकमात्र निर्णायक प्रमाण यह है कि अपने सिद्धान्त के लिए वह अपना सब कुछ स्वाहा कर देने को तैयार रहे।

पाठ-१८

आर्यसमाज के कार्य

आर्य समाज स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यों (श्रेष्ठ पुरुषों) का एक ऐसा संगठन है जो संसार का उपकार करना अपना मुख्य उद्देश्य मानता है और इसके लिए अपने प्रत्येक सदस्य को शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करने के लिए प्रेरित करता है।

शारीरिक एवं आत्मिक उन्नति का सम्बन्ध व्यक्ति से अधिक है परन्तु आर्यसमाज ने इस प्रकार की व्यक्तिगत उन्नति को भी ब्रह्मचर्य, आहार शुद्धि, व्यायाम, पञ्चमहायज्ञ एवं स्वाध्याय और योगसाधना के माध्यम से सामाजिक रूप प्रदान किया है। सामाजिक उन्नति तो होती ही समूहापेक्ष है। इस सामाजिक उन्नति के लिए आर्यसमाज की ओर से जितने निष्ठापूर्ण प्रयत्न हुए हैं, अन्य संस्थाएँ मिलकर भी उतना प्रयत्न नहीं कर पाईं। इस प्रकार के कार्यों का संक्षिप्त लेखा जोखा निम्नांकित है -

(१) अकाल पीड़ितों की सहायता - अकाल चाहे अनावृष्टि के कारण पड़ा हो अथवा अतिवृष्टि के कारण, इस प्रकार के सूखाग्रस्त और बाढ़पीड़ित क्षेत्रों में आर्यसमाज के स्वयंसेवक अन्न, वस्त्र, औषध तथा अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता लेकर सबसे पहले पहुँचते रहे हैं। राजस्थान के बीकानेर क्षेत्र में अकाल पड़ा। जनता भूख से तड़प-तड़पकर मरने लगी। उस समय लोगों को मृत्यु के मुख से बचाने के लिए आर्यसमाज ने पहल की। सन् १९१८ में गढ़वाल में भयानक अकाल पड़ा। वहाँ भी महात्मा हँसराज जी की अपील पर आर्यों ने हज़ारों रुपयों की

सहायता देकर अन्न-वस्त्र का प्रबन्ध किया। बंगाल के अकाल में तो लोगों ने अपनी सन्तानों को बेचना भी शुरू कर दिया था। वहाँ महात्मा हँसराज जी ने महात्मा खुशहाल चन्द जी को अन्न सामग्री समेत सहायता के लिए भेजा। जगन्नाथ पुरी उड़ीसा में अकाल पड़ने पर वहाँ हज़ारों आदमी भूखों मरने लगे। ईसाई पादरियों ने इस विपत्ति का लाभ उठाकर हज़ारों हिन्दुओं को ईसाई बनाया परन्तु आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं ने उन्हें फिर हिन्दु बना लिया।

(२) भूकम्प में बचाव कार्य - सन् १९०४ में कांगड़ा में बड़ा भारी भूचाल आया। सैकड़ों व्यक्ति दबकर मर गये। हज़ारों बेघर हो गये। अन्न, वस्त्र और आवास न रहने से वहाँ की जनता कराह उठी। आर्यसमाज ने वहाँ की जनता की डटकर सेवा की। हज़ारों मन गेहूँ, हज़ारों वस्त्रों एवं औषधियों से दुःखी जनता के दुःख को कम किया।

सन् १९३७ में कोयटा में बड़ा भयंकर भूचाल आया। इसमें लगभग ६० हज़ार व्यक्ति मारे गये तथा घायल हुए। इस अवसर पर डी०ए०वी० कालेज के विद्यार्थियों तथा अन्य आर्य सज्जनों नें पीड़ितों की सेवा और सहायता की।

सन् १९९१ में गढ़वाल में भारी भूकम्प आया। सारा क्षेत्र इससे दुष्प्रभावित हुआ। इस अवसर पर सभा प्रधान श्री दरबारी लाल जी तथा मन्त्री श्री रामनाथ सहगल के निर्देशन में आर्ययुवकों ने भूकम्प पीड़ितों की सहायता वहाँ लम्बे समय तक रहकर की। १९९३ में महाराष्ट्र में भूकम्प आने पर भी इसी प्रकार की सहायता की गई। अनाथ बालकों की रक्षा एवं शिक्षा हेतु शोलापुर में बाल सदन स्थापित किया।

(३) विधर्मियों से रक्षा कार्य - मालाबार प्रान्त में मोपला नाम की जाति के धर्मान्ध मुसलमान रहते हैं। वे वहाँ के हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए उन पर अत्याचार करने लगे। सैकड़ों हिन्दुओं को तलवार के घाट उतार दिया गया। उनके अत्याचारों

के समाचार जब लाहौर में पहुँचे तो वहाँ के आर्यसमाजियों ने उन्हें इस विपत्ति से बचाने के लिए कमर कस ली। उन्होंने मालाबार जाकर देखा। कुएँ हिन्दुओं की लाशों से भरे पड़े थे। लूट खसोट तथा आग लगाने का बाज़ार गर्म था। हिन्दु स्त्रियों का खुल्लमखुल्ला अपहरण किया जा रहा था। हज़ारों हिन्दु देवियाँ विधवा हो चुकी थीं। अनाथ बालकों को ईसाई और मुसलमान बनाया जा रहा था। आर्ययुवकों के पहुँचने पर यह अत्याचार बन्द हुआ। उन्होंने विधर्मी बने बच्चों तथा अन्य स्त्री पुरुषों को धर्म में वापिस किया।

केरल प्रान्त में मुसलमान बनाने के सामूहिक प्रयास को तथा आदिवासी क्षेत्रों में ईसाई बनाने के प्रयत्न को आर्यसमाज ही चुनौती दे सका। आज भी इन क्षेत्रों में आर्यसमाज के स्वयंसेवक निष्ठापूर्वक सेवा कार्य कर रहे हैं।

(४) अधिकारों की संरक्षा - निज़ाम हैदराबाद के द्वारा उसकी रियासत में वैदिक धर्म के प्रचार पर रोक लगाने तथा सत्यार्थ प्रकाश को प्रतिबन्धित किए जाने के विरोध में आर्यसमाज ने सत्याग्रह किया। देश के कोने कोने से आर्यसत्याग्रही हैदराबाद पहुँचे। उन्होंने निजाम सरकार के जुल्मों का सामना किया और विजय पाई।

सिन्ध में सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाये जाने पर भी आर्यसमाज ने सफल संघर्ष किया।

पंजाब में हिन्दी को उचित स्थान दिलाने के लिए भी आर्यसमाज ने महान् सत्याग्रह किया। इस सत्याग्रह की उपलब्धियों पर कुछ स्वार्थी नेताओं की गद्दारी ने और एक राजनीतिक पार्टी के नीति बदलाव ने पानी फेर दिया।

(५) शुद्धि कार्य - विधर्मी बने हुए हिन्दुओं को पुनः हिन्दु बनाने के लिए आर्यसमाज ने शुद्धि आन्दोलन चलाया। इस कार्य के लिए महात्मा देवीचन्द ने होशियारपुर में श्रीमद्दयानन्द साल्वेशन मिशन नाम की शुद्धि सभा स्थापित करके अनेक

मुसलमानों आर ईसाइयों की शुद्धि की। इस संस्था ने मेवात अ त्रावनकोर में बड़ा काम किया। स्वामी श्रद्धानन्द ने दिल्ली शुद्धि सभा की स्थापना की और हसन निजामी की योजनाओं पर पानी फेर दिया जिन हथकण्डों से वह हिन्दुओं मुसलमान बनाना चाह रहा था। पं० लेखराम, स्वामी श्रद्धान तथा महाशय राजपाल का बलिदान शुद्धि कार्य करते हुए हुआ।

(६) अछूतोद्धार - वर्णव्यवस्था के जन्म से माने जाने क परिणाम हुआ हिन्दुओं में छुआछूत के अभिशाप का जन्म चमार, भंगी तथा कुछ अन्य जातियों के लिए यह महारोग ब गया। इस बुराई को मिटाने के लिए आर्यसमाज ने जी-जान क बाज़ी लगा दी। उसने इन जातियों में शिक्षा, सफ़ाई औ सदाचार के प्रचार से अनेक नेता पैदा किए। इन जातियों के बालकों को छात्रवृत्ति दी। डा० अम्बेडकर, बुद्ध प्रिय मौर्य आदि कितने ही मेधावी छात्रों को आर्यसमाज ने शिक्षित कर सम्मान का पाठ पढ़ाया। बाबू जगजीवन राम आदि अनेक नेता समाज को दिये। आर्यसमाजी लेखकों और कवियों ने अछूतों की उपेक्षा तथा उन पर होने वाले अत्याचार के हृदय को छूने वाले चित्र प्रस्तुत करके इन मूक पीड़ितों के पक्ष में सबल संघर्ष किया। उन दिनों इनका पक्ष लेने के कारण रूढ़िवादियों द्वारा आर्यसमाजियों का भी हुक्का पानी बन्द किया गया था। छुआछूत के भूत को झाड़ने के लिए आर्यसमाजियों ने बहुत से ट्रैक्ट लिखे। गुरुकुल कांगड़ी में तो रसोइया भी चमार रखे गये थे। ला० गंगाराम जी एडवोकेट, श्री चरणदास जी पुरी, ला० ठाकुरदास जी रिटायर्ड सैशन जज आदि ने विधर्मी बने हिन्दुओं के उद्धार हेतु एक म्लेच्छोद्धार सभा की स्थापना की। सन्तराम बी०ए० ने जातपात तोड़क मण्डल बनाया। अछूतोद्धार के लिए आर्ययुवक उनकी बस्तियों में जाते थे। वहाँ हवन करते थे। इन लोगों से शराब, मांस तथा तम्बाकू छोड़ने का आग्रह करते थे और प्रसाद भी उन्हीं के हाथों से बँटवाते थे। इस आन्दोलन पर

मारक प्रहार कांग्रेस द्वारा हुआ क्योंकि उसने हरिजन के रूप में इन जातियों पर एक नाम का ठप्पा लगा दिया। इस ठप्पे ने इन जातियों के सदस्यों को ऊँची जातियों में घुलने मिलने से रोक दिया। आर्यसमाज जातियों को तोड़ने का पक्षधर था, आर्थिक सुविधाओं की आड़ में उसे उनके वोट पर डाका नहीं डालना था।

(७) कुरीतियों और कुप्रथाओं का विरोध - आर्य समाज ने हिन्दु समाज में पाई जाने वाली प्रत्येक कुरीति का विरोध किया। बाल विवाह, वृद्ध विवाह और अनमेल विवाह का अन्त कराया। विधवा विवाह को सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की। शराब, जुआ, अनाचार का खुलकर विरोध किया। सती प्रथा के विरुद्ध भावना का प्रसार किया। धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्डों की पोल खोली।

(८) स्त्री शिक्षा - उस समय तक स्त्रियों और शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखा जा रहा था। आर्यसमाज ने शिक्षा के द्वार सबके लिए खोले। स्त्री शिक्षा की सबसे पहली संस्था देवराज कन्या पाठशाला के नाम से जालन्धर में खुली और पहला कालेज कन्या महाविद्यालय के नाम से जालन्धर में ही खुला। उस समय के अखबार साक्षी हैं कि सभी मतावलाम्बियों ने कन्याओं के लिए खोली गई इन संस्थाओं के विरोध में कैसे कैसे बुरे शब्दों का प्रयोग किया था। आज पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या पढ़ने और पढ़ाने वालों में अधिक है। इस स्थिति का श्रेय आर्यसमाज के प्रयत्नों को ही है।

(९) शिक्षा में संस्कृति तथा देशभक्ति का समन्वय - उस समय अंग्रेजों ने अपनी कुटिल नीति से भारतीय पाठशालाओं का अन्त कर डाला था तथा जो सरकारी स्कूल खोले थे उनका उद्देश्य सस्ते क्लर्क पैदा करना तथा पढ़ने वालों में ईसाइयत के प्रति रुचि पैदा करना था। आर्य समाज ने सरकार की इस कुटिल नीति का उत्तर डी०ए०वी० कालिज तथा गुरुकुलों की स्थापना द्वारा दिया। दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज में अंग्रेज़ी के सहारे

पाश्चात्य विज्ञान तथा संस्कृत हिन्दी के सहारे भारतीय संस्
का व्यापक ज्ञान दिया जाने लगा। गुरुकुलों में तो प्रा
परिपाटी को पूर्णतया लागू करने का प्रयत्न किया गया। ये शि
संस्थाएँ पुरुषों के लिए भी खुलीं और स्त्रियों के लिए
स्वाधीनता के तीन दशक बाद ईसाइयों के अंग्रेज़ी माध्यम व
स्कूलों का हिन्दू समाज पर मारक प्रभाव देखकर डी०ए०वी
कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति ने सारे देश में अंग्रेजी माध्यम वा
पब्लिक स्कूलों का जाल बिछा दिया है। इससे सम्पन्न वर्ग
हिन्दू बच्चों का ईसाई स्कूलों में जाना रुक गया है। माध्य
अंग्रेज़ी होते हुए भी ये स्कूल छात्र-छात्राओं में भारतीय संस्कृ
के प्रति प्रेम और निष्ठा उत्पन्न कर रहे हैं। आर्य प्रादेशि
प्रतिनिधि सभा तथा डी०ए०वी० कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति
अधिकारियों ने इन स्कूलों में आर्यसमाज तथा यज्ञशाला क
स्थापना अनिवार्य करके इन संस्थाओं के उद्देश्य को सशक्त
वाणी प्रदान की है।

(१०) धर्म शिक्षा की परीक्षाएँ - आर्यसमाज की सभी शिक्षण
संस्थाओं में, चाहे ये संस्थाएँ आर्य प्रतिनिधि सभा के आधीन है
या प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के, अथवा इनका प्रबन्ध स्थानीय
आर्यसमाजों के आधीन है। सभी में धर्मशिक्षा की परीक्षाएँ
आयोजित होती हैं। इन परीक्षाओं के माध्यम से छात्र-छात्राओं मे
धार्मिक रुचि बढ़ती है। धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्डों से
वे सचेत होते हैं तथा देश और जाति के प्रति कर्तव्य भावना
दृढ़ होती है। अब एक परिपत्र के द्वारा अंग्रेजी माध्यम के
पब्लिक स्कूलों में पढ़ने वालों के लिए भी धर्मशिक्षा विषय में
पास होना अनिवार्य कर दिया गया है। इस पग के परिणाम
दूरगामी और अत्यन्त शुभ हो रहे है। संस्कृत तथा हिन्दी के
प्रति सहज अनुराग को उत्पन्न करने में भी ये परीक्षाएँ अपना
सबल सहयोग देंगी।

(११) धर्मशिक्षकों, उपदेशकों और पुरोहितों का निर्माण -

इस दिशा में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने विशेष ध्यान दिया है। उसने मोहनी आश्रम भूपतवाला, हरिद्वार में वैदिक साधनाश्रम स्थापित किया है। इस आश्रम में साधना की विशेष व्यवस्था है। डी०ए०वी० संस्थाओं में कार्यरत धर्मशिक्षकों एवं धार्मिक रुचि वाले अन्य अध्यापकों का पुनश्चर्या शिविर भी अधिकतर इस आश्रम में ही लगाया जाता है। ब्राह्म महाविद्यालय हिसार में विद्वान् पुरोहित तैयार किये जाते हैं। दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय टंकारा में आर्योपदेशक तैयार होते हैं तथा डी०ए०वी० नैतिक शिक्षा संस्थान, आर्य समाज मन्दिर मार्ग में गुरुकुल के स्नातकों एवं संस्कृत में एम०ए० करने वालों को धर्मशिक्षक बनने का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षित धर्मशिक्षकों की डी०ए०वी० संस्थाओं में नियुक्ति निश्चित बनाई जाती है। उपर्युक्त चारों संस्थाओं में शिक्षा तो निःशुल्क है ही, भोजनादि का व्यय भी नहीं लिया जाता।

अभ्यास

(१) आर्यसमाज अपने किस किस विशेष कार्य द्वारा जनता की सेवा कर रहा है?

(२) अकाल पीड़ितों तथा भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए आर्यसमाज ने क्या किया है?

(३) अछूतों का उद्धार करने के लिए आर्यजनों ने क्या क्या प्रयत्न किये?

(४) 'शुद्धि कार्य' से क्या अभिप्राय है? इसके लिए आर्यसमाज ने क्या किया?

(५) कुरीतियों को मिटाने तथा नारी शिक्षा दिलाने के लिए आर्य समाज ने क्या प्रयत्न किया?

(६) पाठ्यक्रम में धर्मशिक्षा की अनिवार्यता होने के क्या दूरगामी परिणाम हो सकते हैं?

पाठ-१९

संकल्प गीत

बनो आर्य खुद और जहाँ को बना दो।
जो कहते हो, दुनिया को करके दिखा दो।।१।।

प्रभु एक है, वेद है उसकी वाणी।
ये पैग़ाम ऋषियों का घर घर सुना दो।।२।।

न ऋषियों की तहज़ीब मिंट जाये वीरो।
मिटाना जो चाहे, उसे तुम मिटा दो।।३।।

हँसाओ न दुनिया को आपस में लड़कर।
सकल विश्व में प्रेम गंगा बहा दो ।।४।।

जहालत की दीवार अब तक खड़ी है।
उठो औ उसे उठके जड़ से हिला दो।।५।।

भटकते बहुत तश्नालब फिर रहे हैं।
मुसाफिर उन्हें जामे वदहत पिला दो।।६।।

शब्दार्थ- पैग़ाम = सन्देश　　तहज़ीब = सभ्यता
सकल = सारे　　जहालत = अज्ञान
तश्नालब = प्यासे होंठ वाले
जामे वहदत = अमृत का प्याला

अभ्यास

(१) 'जहाँ को आर्य बना दो' इस भाव को व्यक्त करने वाला वेदमन्त्र का अंश कौन सा है?

(२) ऋषियों का पैग़ाम क्या है?

(३) ऋषियों की तहज़ीब मिटाने की इच्छा वालों के साथ तुम क्या व्यवहार करोगे?

(४) जहालत को दीवार क्यों बताया गया है? इसने किसको किससे दूरर किया हुआ है?

(५) प्रेम गंगा बहाने का क्या भाव है?

कार्य शीघ्र करने के लिए उसे धीरे (धीरज) से करो। उतावली केवल धोखा है। जल्दबाज़ी से दूर रहने वाले का जीवन शान्तिपूर्ण होता है और वह काम को बड़े आराम और आनन्द से करता है। जल्दबाज़ी शान्ति, स्वास्थ्य और प्रसन्नता को हरण कर लेती है और यह जितना काम आदमी कर सकता है उतना नहीं करने देती।

पाठ-२०

वैदिक प्रार्थनाएँ और शिक्षाएँ

वेद अपौरुषेय हैं। किसी व्यक्ति ने उनकी रचना नहीं की वेदों का ज्ञान सृष्टि के आदि में अग्नि, वायु, आदित्य औ अंगिरा नामक चार ऋषियों के हृदय में परम पिता परमात्मा प्रकाशित किया। उन्होंने इस ईश्वरीय ज्ञान को दूसरे ऋषियों क सुनाया। लम्बे समय तथा पीढ़ी दर पीढ़ी सुनने-सुनाने के रूप मे चलते रहने के कारण ही वेदों को श्रुति का नाम प्राप्त हुआ।

वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद वेदों में कल्याणकारी प्रार्थनाएँ हैं, कर्त्तव्य सम्बन्धी शिक्षाएँ हैं एव आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ज्ञान के बोधक मन्त्र हैं।

हमें मानव का शरीर मिला है जो वास्तव में देवताओं की नगरी है। इसमें आठ चक्र तथा नौ द्वार हैं। यह अयोध्या (अजेय) है अर्थात् यदि वेद के आदेश के अनुरूप जीवन को चलाया जाय तो इसे कोई जीत नहीं सकता। वेद में शरीर के पूर्ण आयु पर्यन्त स्वस्थ रहने की प्रार्थना की गई है-

''पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं
श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।''

अर्थात् हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जियें, सौ वर्ष तक सुनें, सौ वर्ष तक बोलें, सौ वर्ष तक अदीन भाव से बिना पराधीन हुए जीवित रहें और इसके बाद भी इसी प्रकार सौ वर्ष रहें।

वेद में धन की प्रार्थना भी है किन्तु वह धन सुपथ से, ईमानदारी के मार्ग से मिले। अतः कहा गया है - **''अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्।''**

इस सुपथ पर तभी चला जा सकता है जबकि हमारी इन्द्रियाँ और अंग स्वस्थ एवं मज़बूत होने के साथ साथ कल्याण के मार्ग पर चलें। अतः कहा गया है -

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।

हे प्रभो हम कानों से शुभ सुनें, आँखों से शुभ देखें, हृष्टपुष्ट शरीर और दृढ़ अंगों से दिव्य और हितकारी जीवन को प्राप्त करें। तथा -

वाङ्म आसन् नसो प्राणशः चक्षुरक्ष्णोः
श्रोत्रं कर्णयोः। अपलिताः केशा अशोणा दन्ता

बहु बाह्वोर्बलम्। अरिष्टानि मेऽङ्गानि।

अर्थात् मेरी वाणी में बोलने की शक्ति, नासिका में साँस लेने, आँखों में देखने और कानों में सुनने की शक्ति सदा बनी रहे। मेरे केश न पकें, दाँत कान्तियुक्त रहें, बाहुएँ बलवान् रहें। मेरे अंग नीरोग रहें। तथा -

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।

तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु।।

हे स्वयं प्रकाशमान परमेश्वर मुझे उस मेधा बुद्धि से सम्पन्न कीजिए जिसके लिए देवता तथा पितर लोग भी उपासना करते हैं।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

जो जागते हुए दूर निकल जाता है और सोते समय वैसे ही चला जाता है, किन्तु जो ज्योतियों की ज्योति जिसके न रहने पर ये समस्त ज्योतियाँ प्रकाशित नहीं कर पात वह मेरा मन दुविधा रहित और शिवसंकल्प वाला बने।

यद्यपि इन प्रार्थनाओं में भी तदनुसार आचरण की शि विद्यमान है तथापि बहुत से ऐसे मन्त्र हैं जो शुद्ध रूप में शि ही देते हैं। यथा -

अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित्कृषस्व।

जुआ मत खेलो। यदि एक को अनेक बनाने की लालसा तो खेती करो।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः।

पुत्र को पिता के व्रतानुकूल आचरण करना चाहिए औ अपने आचरण से माता के मन को प्रसन्न करना चाहिए।

'त्यक्तेन भुञ्जीथाः'

त्याग पूर्वक भोगों को भोगना चाहिए, क्योंकि धन तो ढलती फिररती छाया है- 'कस्यस्विद्धनम्'।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

तुममें कोई छोटा या बड़ा नहीं, तुम सब भाई भाई हो, मिलकर समृद्धि के लिए सौभाग्य के लिए आगे बढ़ो।

'हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्य पिहितं मुखम्'

लोभ रहित होकर ही सत्य को पहचाना जा सकता है क्योंकि स्वर्ण की ललक सचाई को ठके रहती है।

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते।।

जरा अवस्था से पहले उस मनुष्य की आँखें निर्बल नहीं होतीं, उसके प्राण उसका त्याग नहीं करते जिसने ब्रहमचर्य के रहस्य को जाना और उस पर आचरण किया है।

वेद सब सत्यविधाओं का पुस्तक है। उसमें शरीर, राष्ट्र, मन, आत्मा के उत्थान के, सामाजिक उन्नति के नियमों का ज्ञान दिया हुआ है।

गणित का मूल गिनती, पहाड़े आदि है। वेद मन्त्रों में समसंख्या, विषमसंख्या तथा पहाड़ों के मन्त्र हैं। वर्गमूल, घनमूल, लघुतम, महत्तम आदि के सूत्र हैं। रोगों के लक्षण तथा उनकी औषधियों का वर्णन है। राजतन्त्र और प्रजातन्त्र की व्यवस्था है। समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति तथा प्राणिमात्र के प्रति कर्त्तव्य का संकेत है।

'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्' वाक्सूक्त के इस मन्त्र में राष्ट्रभाषा के महत्त्व का उल्लेख है। वेद के ईश्वरीय शब्दों में वाणी स्वयं कहती है कि यदि में राष्ट्र की अपनी हूँ तो उस राष्ट्र को ऐश्वर्यों की प्राप्ति कराती हूँ। यज्ञ की भावना वाले किसी के सत्कार, सहयोग और सहायता में मेरे अर्थात् राष्ट्रभाषा के ही प्रयोग को प्राथमिकता देते हैं। मैं उस राष्ट्र के विपुल ऐश्वर्य की स्थिति विधात्री हूँ, उसे मिटने नहीं देती तथा अप्राप्त ऐश्वर्य की उसे विपुल प्राप्ति कराती हूँ।

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः' इस मन्त्र के द्वारा वेद ने यह ज्ञान दिया है कि संसार में सर्वथा मौलिक अनादि तत्त्व तीन हैं - ईश्वर, जीव और प्रकृति। इनमें आत्मा और परमात्मा समान धर्मी होने से मित्र हैं। जीव यहाँ कर्मों का कर्त्ता और उनके फलों का भोक्ता है जबकि परमात्मा द्रष्टामात्र है, भोक्ता नहीं।

'अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते' मन्त्र के द्वारा विद्या और अविद्या अर्थात् थ्यूरी और प्रैक्टिकल, सिद्धान्त और

प्रयोग का समन्वित महत्त्व समझाया गया है। वहाँ बताया ग
है कि केवल प्रैक्टीकल अर्थात् प्रयोगात्मक समझ अन्धेरे में डा
देती है और केवल सिद्धान्तों की जानकारी उससे भी अधि
अँधेरे में पहुँचा देती है। सफलता के लिए दोनों का बो
अपेक्षित है। इसी प्रकार 'सम्भूतिं च विनाशं च०' मन्त्र द्वा
स्पष्ट किया गया है कि केवल ध्वंस का मार्ग अँधेरे की ओर ले
जाता है और सम्भूति अर्थात् निर्माण का मार्ग उससे भी अधिक
अंधेरे में ढकेल देता है। जीवन में ध्वंस और निर्माण का
खण्डन और मण्डन का, निषेध और विधि का, नकारात्मकता
और सकारात्मकता का यथेष्ट ज्ञानपूर्वक प्रयोग ही श्लाघ्य है।

आर्यसमाज के चतुर्थ नियम में वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना मानव का परमधर्म बताया गया है ताकि हम वेद के अध्ययन द्वारा यह जान सकें कि हम परमात्मा से क्या माँगें? लौकिक एवं पारलौकिक सुख के लिए हमें किन शिक्षाओं पर आचरण करना चाहिए तथा अभ्युदय एवं निःश्रेयस् के लिए हमें क्या कुछ जानना, समझना और करना चाहिए।

अभ्यास

(१) वेदों के नाम बताकर यह भी बतायें कि उन्हें श्रुति क्यों कहते हैं?

(२) वैदिक प्रार्थनाएँ किस प्रकार की हैं? किसी एक प्रार्थना का उदाहरण दें।

(३) वेद हमें कैसी शिक्षा देते हैं? किसी पारिवारिक अथवा सामाजिक शिक्षा का उल्लेख करें।

(४) वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक क्यों कहा जाता है?

(५) वेद में किस प्रकार का ज्ञान है? कोई एक उदाहरण दें।

पाठ-२१

आत्म समर्पण

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में, है हार तुम्हारे हाथों में।।१।।

मैं तुमको कभी नहीं भजता, तुम मुझको कभी नहीं तजते।
अपकार है मेरे हाथों में, उपकार तुम्हारे हाथों में।।२।।

दृग बिन्दु बनाया करते हैं, एक सेतु विरह के सागर पर।
उत्थान पतन पर मेरा है करतार तुम्हारे हाथों में।।३।।

मेरा निश्चय है एक यही, इक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं।
अर्पण कर दूँ जगती भर का, सब प्यार तुम्हारे हाथों में।।४।।

या तो मैं जग से दूर रहूँ, यदि जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ।
इस पार तुम्हारे हाथों में, उस पार तुम्हारे हाथों में।।५।।

यदि मानुष का मुझे जन्म मिले, तब तव चरणों का पुजारी बनूँ।
मुझ पूजक की इक इक रग का हो तार तुम्हारे हाथों में।।६।।

जब जब संसार का बन्दी बन, दरबार तेरे में आऊं मैं।
हो मेरे पापों का निर्णय, सरकार तुम्हारे हाथों में।।७।।

मुझ में तुझ में है भेद यही मैं नर हूँ तू नारायण है।
मैं हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में।।८।।

अभ्यास

(१) इस गीत में भक्त ने अपना क्या निश्चय प्रकट कि
है?

(२) मनुष्य का जन्म पाकर भक्त क्या होना चाहता है?

(३) भक्त ने अपने आपको संसार का बन्दी क्यों बताया है

(४) भक्त और भगवान् में यहाँ क्या अन्तर बताया गया है

(५) जीवन का भार भगवान् के हाथों में छोड़ देने का भक्त
को क्या लाभ दिखाई देता है?

कष्ट के छुटकारे की पञ्चक्रमीय योजना

१- कष्टों के आने के पहले ही उनसे भिड़ने की ज़रूरत नहीं
है।

२- तुम्हारा कष्ट वस्तुतः कैसा है, उसका ठीक ठीक पता तो
लगा लो।

३- कष्टों को अगर आते देखो तो डटकर उनका सामना करो।

४- कष्टों से एक एक करके निपटने का नियम बना लो।

५- कष्टों पर विजय पाने के लिए कल्याण में विश्वास, आशावाद, मानसिक सन्तुलन, आत्मबल, धैर्य तथा निर्भीकता अत्यन्त अपेक्षित है। विश्वास और सन्देह दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

अथ शान्तिप्रकरणम्

ओ३म् शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयो शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥१॥

ऋ० ७।३५। १॥अथ० १९।१०।१॥

हे ईश्वर! बिजली और अग्निरक्षा-सामग्री के द्वारा हमें सुखकारकर हों। ग्रहण योग्य वस्तु देने वाले बिजली और जल हमें सुखकारी हों, चन्द्रमा और औषधिगण उत्तम धन के लिये रोगनाशक और भयनिवर्त्तक हों। बिजली और पवन अन्नादि लाभरूप में हमें सुखदायक हों।

ओ३म् शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं न पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शं न सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु।२।

ऋ०७।३५।२॥

हमारे लिये ऐश्वर्य सुखदायक हो और हमारी प्रशंसा शान्तिदायक हो, हमारी बुद्धि शान्तिदायक हो और सब प्रकार के धन शान्तिदायक हों। मर्यादित सत्य कथन शान्तिदायक हो। हमारा बहुत प्रसिद्ध श्रेष्ठों का मान करने हारा न्यायकारी भगवान् शान्तिदायक हो।

ओ३म् शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः। शं रोदसी वृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु।३।

ऋ०७।३५।३॥

पोषण और धारण करने वाला ईश्वर हमारे लिये शान्तिकारक हो। वह पृथिवी अन्नादि से हमारे लिये शान्तिकारक

हो। प्रकाश सहित अन्तरिक्ष शान्तिकारक हो। मेघ शान्तिदायक हो, विद्वानों के सुन्दर आगमन हमें शान्तिकारक हो

ओ३म् शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मि वरुणावश्विना शम्। शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं इषिरो अभि वातु वातः।४।

ऋ०७।३५।४

प्रकाश स्वरूप अग्नि हमारे लिये सुखकारक हो, प्राण अ जल हमारे लिए सुखकारक हों, उपदेशक और विद्वा शान्तिकारक हों। धर्मात्माओं के शुभकर्म हमारे लिए शान्तिकार हों, गमनशील पवन हमारे लिए सुख देता हुआ बहे।

ओ३म् शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये न अस्तु। शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस् जिष्णुः।।५।।

ऋ०७।३५।५

प्रशंसित क्रियाओं में, प्रकाशित अप्रकाशित में सूर्य औ अन्तरिक्ष हमें शान्तिदायक हों। ओषधियाँ वन के पदार्थ हम शान्तिदायक हों और सकल धनवान् हमें सुख दिया करें।।

ओ३म् शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुण सुशंसः। शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरि शृणोतु।।६।।

ऋ०७।३५।६।

दिव्य गुणयुक्त सूर्य हमें सुखदायक हो, जल सूर्य क किरणों के साथ सुखदायक हो, शांतस्वरूप परमेश्वर नेत्र के द्वार हमें सुख दायक हो, विवेचक विद्वान् वाणियों से हमें सुखमय उपदेश सुनावें।

ओ३म् शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नो ग्रावाणः शम्

सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः।।७।।

ऋ० ७।३५।७।।

चन्द्रमा हमें सुखदायक हो, वेद हमें सुखदायक हों, पत्थर आदि धातु सुखदायक हों, यज्ञ और वेदी सुखदायक हो, यज्ञस्तम्भ और ओषधियाँ सुखदायक हों।

ओ३म् शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः।।८।।

ऋ० ७।३७।८।।

तेजस्वी सूर्य हमें सुखदायक हो, वह उदय होकर चारों दिशायें हमें सुखदायक करे, पहाड़ हमें स्थिरता से सुखदायक हों, समुद्र हमें सुखदायक हों, और जल सुखदायक हो।

ओ३म् शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरूतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः।।९।।

ऋ० ७।३५।९।।

सत्कर्मों के साथ विदुषी माताएँ सुखदायक हों, शुभ विचार वाले विद्वान् हमें सुखदायक हों, व्यापक ईश्वर हमें सुखदायक हो, अन्तरिक्ष हमें सुखदायक हो और पवन सुखदायक हो।

ओ३म् शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः।।१०।।

ऋ० ७।३५।१०।।

सर्वोत्पादक और रक्षक परमात्मा हमें सुखदायक हो। जगमगाती हुई प्रभात वेलायें हमें सुखदायक हों, बादल हमें सुखदायक हों, खेत का स्वामी किसान हमें सुखदायक हो।

ओ३म् शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती स धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्य पार्थिवाः शं नो अप्याः॥११॥

ऋ० ७।३५।११॥अ० १९।१३।

दिव्य गुणयुक्त विद्वान् हमें सुखदायक हो, विद्या उत्त बुद्धि के साथ सुखदायक हो, आत्मदर्शी और दान की वर्षा कर हारे सुखदायक हों, पृथिवी के पदार्थ हमें सुखदायक हों, जल सम्बन्धी पदार्थ हमें सुखदायक हों।

ओ३म् शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्त शमु सन्तु गावः। शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु॥१२॥

ऋ० ७।३५।१२॥अ० १९।११।१

विद्वान् सत्यवक्ता हमें सुखदायक हों, घोड़े हमें सुखदायक हों और गौएं सुखदायक हों, श्रेष्ठ बुद्धि वाले, अच्छे काम करने हारे, हस्तकार्यचतुर शिल्पी हमें सुखदायक हों, यज्ञों में माता-पिता आदि पितर हमें सुखदायक हों।

ओ३म् शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः॥१३॥

ऋ० मं० ७।सू० ३५। म० १३॥

जगत् रूप, पाद वाला, अजन्मा ईश्वर हमें शान्तिदायक हो, समुद्र शान्तिदायक हो, जलों की नौका सुख से पार लगाने वाली हो, विद्वानों का रक्षक परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो।

ओ३म् इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे॥१४॥

य०३६।८॥

हे ईश्वर! आप समस्त जगत के स्वामी रूप से प्रकाशित

हैं। हमारे पुत्रादि और पशुओं के लिए सुखकारी हों।

ओ३म् शं नो वातः पवता ँ शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु।।१५।।

यजु० ३६।१०।।

हे परमेश्वर! पवन हमको सुखकारी होकर बहे, सूर्य सुखकारी होकर तपे, विद्युत् सुखकारी हो, बादल हमारे लिये सब ओर से वर्षा करे।

ओ३म् अहानि शं भवन्तु नः श ँ रात्रीः प्रतिधीयताम्। शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः।।१६।।

य० ३६।११।।

हे परमात्मन्! दिन हमें सुखकारी हों, रातें सुख के लिये हों, बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि दोनों हमें सुखकारी हों, जल और बिजली हमें सुख देवें, अन्नों के सेवनार्थ पृथ्वी हमें सुखकारी हों, बिजली और ओषधियाँ हमें सुख देवें।

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः।।१७।।

य० ३६।११।।

हे जगदीश्वर! इष्ट सुख की सिद्धि के लिये सर्वव्यापक ईश्वर आनन्ददायक हो और चारों ओर से हमारे ऊपर सुख की वर्षा करे।

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांतिः वनस्पतयः शांतिर्बिश्वेदेबाः शांतिर्ब्रह्म शांतिः सर्वथ ँ शांतिः शांतिरेव शांतिः सा मा शांतिरेधि।।१८।।

य० ३६।१७। अथ० १९।९।१४।।

प्रकाशमान सूर्य सुखदायक हो, अन्तरिक्ष सुखदायक हो,

भूलोक सुखदायक हो, जल और ओषधियें सुखदायक हों, ग वृक्ष वनस्पति सुखदायक हों। उनसे भिन्न सब ही सुखदायक ह स्वयं शान्ति भी मुझको शान्ति देवे।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरद शतं जीवेम शरदः शत ँ श्रृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवा शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरद शतात्॥१९॥

यजु० ३६।२४

सब को देखनेहारा, विद्वानों का हितकारी, अनादि काल स वह ईश्वर वर्तमान है, उसकी कृपा से हम सौ वर्ष तक देखें सौ वर्ष तक सुनते रहें, सौ वर्ष तक बोलते रहें, सौ वर्ष तक स्वतन्त्रता से रहें, और सौ वर्ष से अधिक भी हम यह सब व्यवहार करते रहें।

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२०॥

यजु० ३४।१॥

जो मन जाग्रत अवस्था में दूर चला जाता है। वही स्वप्न में भी उसी प्रकार चलता रहता है। वह मन दूर जाने वाला और प्रकाशक (इन्द्रियों) का भी प्रकाशक है, ऐसा मन अच्छे विचार वाला हो।

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२१॥

य० ३४।२॥

जिस मन से कर्मनिष्ठ और मननशील पुरुष यज्ञ तथा वैज्ञानिक व्यवहारों में कर्मों को करते हैं और जो प्राणियों के भीतर अपूर्व और पूजनीय है, वह मेरा मन शुभ विचारने वाला हो।

ओ३म् यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२२॥

य० ३४।३॥

जो मन बुद्धि का उत्पादक तथा स्मरणशक्ति का आधार है और जो प्राणियों के भीतर प्रकाशमान है, जिसके बिना कुछ भी काम नहीं किया जाता है, वह मेरा मन शुभ विचार वाला हो।

ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२४॥

य० ३४।५॥

हे परमात्मन्, जिस मन में चारों वेद इस प्रकार विद्यमान हैं, जैसे रथ के पहिये के धुरे में अरे लगे रहते हैं, जिसमें प्राणियों के सब विचार आते जाते हैं, वह मेरा मन अच्छे संकल्प वाला हो।

ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२५॥

य० ३४।६॥

जो मन मनुष्यों को उसी प्रकार (इधर-इधर) ले जाता हैं जैसे चतुर सारथी घोड़ों को, और जो हृदय में स्थिर है और जो जरा-रहित और अतिशय गमनशील है वह मन अच्छे संकल्प वाला हो।

**ओ३म् स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। श
राजन्नोषधीभ्यः॥२६॥**

ऋ० ९।११।३। साम० उ० आ० १

हे प्रकाशमान परमेश्वर! हमारी गौओं के लिए और मनुष्
के लिए आप सुख कारक हों, घोड़ों के लिए सुखकारी हों, हम
अन्नादि औषधियों की रक्षा का हमें सामर्थ्य देवें।

**ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे
इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो
अस्तु॥२७॥**

ऋ० १९।१५।५।

हे भगवन्! हमें अन्तरिक्ष और प्रकाशित तथा अप्रकाशित
लोकों से अभय देवें। आगे, पीछे, नीचे, ऊपर सब ओर से हमें
निर्भीक करें।

**ओ३म् अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं
परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं
भवन्तु॥२८॥**

हे अभय प्रभो! हमें मित्र और अमित्र दोनों से अभय हो, जाने हुए और न जाने हुए लोगों से भी अभय हो, दिन और रात सभी कालों में हम निर्भीक हों, मेरी सब आशाएँ सुखकारी हों।

विशिष्ट समयों पर बोले जाने वाले मन्त्र

(१) स्नान आरम्भ करते समय -

ओ३म् आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे।।

अथर्व० काण्ड-२ सूक्त-५ मन्त्र-१

जल निश्चय से सुखकारक हैं इसलिए वे हमारे बल पराक्रम के लिए तथा बड़ी रमणीयता के दर्शन के लिए हमें स्वस्थता प्रदान करें।

(२) भोजन प्रारम्भ करते समय -

ओ३म् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे शं चतुष्पदे।।

यजु० ११।८३

हे अन्न के स्वामिन्! दीन दुखियों और अभाव पीड़ितों के लिए अन्न का दान करने वाले को अपनी कृपा से बढ़ाओ। हम दो पैर वाले पुरुषों के पारिवारिक जनों और चार पैर वाले पशुओं के लिए अन्न बल, पराक्रम प्रदान करो।

(३) स्वाध्याय प्रारम्भ करते समय-

ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु।।

यजु० ३२।१४

हे ज्ञान स्वरूप परमात्मन्। जिस बुद्धि का देव समूह और

पितृगण सेवन करते हैं अर्थात् चाहते हैं, उस मेधा बुद्धि
आज मुझको मेधावी कर दो।

(४) सभा कार्य प्रारम्भ करते समय -

**ओ३म् भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भ
पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

यजु० २५

हे सत्संग योग्य विद्वानों! हम कानों से शुभ ही सुनें, ने
से अच्छी वस्तुओं को देखें, दृढ़ अंगों से आपकी स्तुति कर
वाले हम लोग शरीरों से अथवा मर्यादा के साथ विद्वानों के लि
कल्याणकारी जो आयु है उसको अच्छे प्रकार प्राप्त होवें।

(५) शस्त्राभ्यास आरम्भ करते समय -

**ओ३म् स्थिरा वः सन्त्वायुधा
पराणुदे वीलू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी
मा मर्त्यस्य मायिनः ।।**

ऋग्वेद १/३६/

तुम्हारे अस्त्र शस्त्र शत्रुओं की पराजय करने वाले और उन
रोकने में प्रशंसनीय एवं दृढ़ हों। तुम्हारी सेना प्रशंसनीय हे
जिससे तुम सदा विजयी रहो। परन्तु जो निन्दित, अन्याय रूप
काम करता है उसके लिए ये चीज़ें न हों।

संगठन सूक्त

ॐ सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इडस्पदे समिध्यसे सनो वसून्याभर ।।१।।

हे प्रभो! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं, कीजिए धन-वृष्टि को।।१।।

ॐ संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे सं जानाना उपासते।।२।।

प्रेम से मिलकर चलें, बोलें सभी ज्ञानी बनें।
पूर्वजों की भाँति हम कर्त्तव्य के मानी बनें।।२।।

ॐ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।३।।

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान पाते हैं, बराबर भोग्य पा सब नेक हों।।३।।

ॐ समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।४।।

हों सभी के मन तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से, जिससे बढ़े सुख-सम्पदा।।४।।

प्रश्न-पत्र का प्रारूप

समय - ३ घण्टे　　　　कक्षा - १०　　　　पूर्णांक - ५०

सभी प्रश्नों के अंक समान हैं।

(१) अपनी पाठ्य पुस्तक से ईश्वर भक्ति का कोई गीत लिखें।

अथवा

भोजन या सभा के प्रारम्भ में बोला जाने वाला मन्त्र लिखें।

(२) वेदों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सम्भावित शंकाओं का समाधान करके उनका उत्पत्ति काल बतायें।

अथवा

आर्य समाज के किन्हीं चार कार्यों का संक्षेप में उल्लेख करें।

(३) महाशय राजपाल अथवा लौह पुरुष सरदार पटेल का सामान्य परिचय दें।

(४) श्राद्ध और तर्पण का अर्थ स्पष्ट करके इनकी उपयुक्त विधि का उल्लेख करें।

अथवा

सुख के तीन मार्गों में आपको कौन सा मार्ग पसन्द है और क्यों? युक्तियुक्त उत्तर दें।

(५) वैदिक संस्कारों का महत्त्व बताकर किन्हीं दो संस्कारों का संक्षिप्त परिचय दें।

अथवा

ईश्वर, पुण्य, सत्यभाषण, निर्गुणोपासना, आर्य, स्वभाव में से किन्ही चार के सम्बन्ध में अपनी मान्यता अपने शब्दों में प्रकट करें।

पठनीय पुस्तकें

(१) संक्षिप्त सत्यार्थ प्रकाश	डी०ए०वी० प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली
(२) कर्त्तव्य दर्पण	सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, तुर्कमानगेट, दिल्ली
(३) दुनिया में रहना किस तरह	गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली
(४) वैदिक दिग्दर्शिका	आर्य समाज, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली

विद्यार्थियों से अनुरोध है कि वे उपर्युक्त पुस्तकों में से कम से कम किसी एक पुस्तक का स्वाध्याय अवश्य करें। ये पुस्तक स्कूल पुस्तकालय से मिल सकती हैं।

स्कूल पुस्तकालय में उपर्युक्त पुस्तकों की पाँच पाँच प्रतियाँ तथा नीचे लिखी पुस्तकों की दो दो प्रतियाँ अवश्य रहें। नीचे की पुस्तकें धर्मशिक्षक के लिए है -

(१) धर्म शिक्षा भाग-१०	आर्यविद्या सभा, डी०ए०वी० प्रबन्धकर्त्री समिति, नई दिल्ली
(२) धर्मशिक्षा भाग-१०	आर्यसमाज विद्यासभा, अजमेर
(३) नैतिक शिक्षा भाग-१०	आर्य विद्या परिषद्, आर्यसमाज हनुमानरोड, नई दिल्ली
(४) नैतिक शिक्षा भाग-१०	गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली

ये सभी पुस्तकें आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, आर्यसमाज मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली से मँगाई जा सकती हैं।

आर्यसमाज के नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर,, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य बर्तना चाहिये।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

जय घोष

जो बोले सो अभय–

वैदिक धर्म की जय ।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र की – जय ।

योगिराज श्री कृष्ण चन्द्र की – जय ।

ऋषिवर दयानन्द की – जय ।

धर्म पर मर मिटने वालों की – जय ।

देश पर बलिदान होने वालों की – जय ।

भारत माता की – जय ।

गौ माता की – जय ।

आर्यसमाज – अमर रहे ।

वेद की ज्योति – जगती रहे ।

ओ३म् का झण्डा – ऊँचा रहे ।

वैदिक ध्वनि – ओ३म् ।

x12

मूल्य - 14.00 रुपये

प्रकाशन विभाग
डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्तृ समिति
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, आर्य समाज भवन
यू० पी० ब्लॉक, पीतमपुरा, दिल्ली-110088